संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

हिन्दी

दिसम्बर २००३
मार्गशीर्ष वि.सं. २०६०
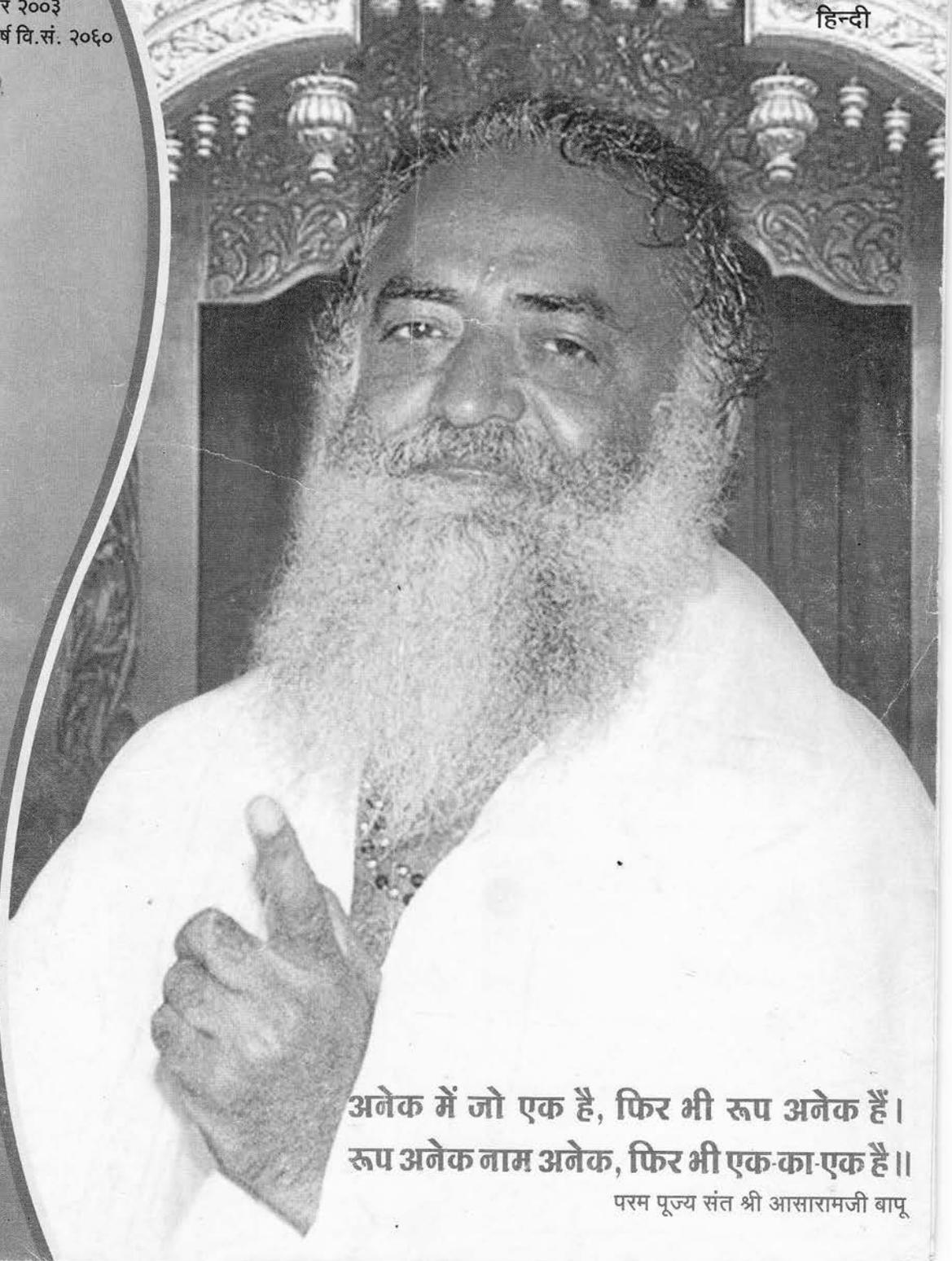
अनेक में जो एक है, फिर भी रूप अनेक हैं।
रूप अनेक नाम अनेक, फिर भी एक-का-एक है॥

परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू

विसनगर (गुज.) में पूर्व राज्यमंत्री, सांसद एवं सागर डेयरी के चेयरमैन श्री मोतीभाई चौधरी के नाम से 'श्री मोतीभाई कन्या छात्रालय' का भूमिपूजन कार्यक्रम पूज्यश्री के करकमलों से सम्पन्न हुआ। पूज्यश्री के साथ खड़े हैं श्री मोतीभाई। अन्य छायाचित्रों में पूज्यश्री का सत्संग-श्रवण करते विसनगर के सत्संगी।

बड़नगर (गुज.) में सत्संग-कार्यक्रम के दौरान उमड़ा विशाल जनसैलाब।

॥ ऋषि प्रसाद ॥

वर्ष : १४ अंक : १३२
दिसम्बर २००३ मूल्य : रु. ६-००
मार्गशीर्ष-पौष, वि.सं.२०६०

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रु. ५५/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक: रु. २००/-
(४) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक: रु. ३००/-
(४) आजीवन : रु. ७५०/-

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) द्विवार्षिक : US $ 40
(३) पंचवार्षिक: US $ 80
(४) आजीवन : US $ 200

कार्यालय **'ऋषि प्रसाद'** श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०-११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site: www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : कौशिक वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदान्त सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-३८०००५.
मुद्रण स्थल : हार्दिक वेबप्रिंट, राणीप और विनय प्रिंटिंग प्रेस, अमदावाद।
सम्पादक : कौशिक वाणी
सहसम्पादक : प्रे. खो. मकवाणा

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग

SONY चैनल पर 'संत आसाराम वाणी' सोमवार से शुक्रवार सुबह ७-३० बजे व शनिवार और रविवार सुबह ७-०० बजे
संस्कार चैनल पर 'परम पूज्य लोकसंत श्री आसारामजी बापू की अमृतवर्षा' रोज दोप. २-०० बजे तथा रात्रि ९-४० बजे
साधना चैनल पर 'संत श्री आसारामजी बापू की सत्संग-सरिता' रोज रात्रि ९-०० बजे

कैसे प्रीति टिका पायेगा...

प्रीति की रीति नहीं समझा तो, जग की प्रीति में खप जायेगा।
तू शाश्वत है जग नश्वर, कैसे प्रीति टिका पायेगा॥
तू अधिकारी शाश्वत पद का, भूल से पथ नश्वर का पकड़ा॥
देहाध्यास में उठता-गिरता, मानव-जन्म का लक्ष्य तू भूलता॥
सिन्धु बिन्दु है एकरूपता, बिन्दु बनके भटकता रहता॥
बिन्दु भूला तो सिन्धु रहेगा, बिन्दु बना सिन्धु से छूटेगा॥
राग-द्वेष में क्यों तू झुलसता, वृत्ति नाच नचाती है॥
समवृत्ति गुरु-रज ही बनाती, नाहक पदार्थ के पीछे दौड़ता॥
अब तो स्वीकार गुरु-बन्धन को, छोड़ दे तू सब जग-बन्धन को॥
दावा है मेरा निर्बन्ध बनेगा, खुले गगन में निर्भय विचरेगा॥

- छाया (बड़ौदा)

पूर्णता की ओर

जो सत्संग में नित्य आते रहेंगे,
उन्हें ज्ञान में प्रभु जगाते रहेंगे।
जो श्रद्धालु प्रेमी बनेंगे विवेकी,
वे मोह-भ्रम को मिटाते रहेंगे।
मिलेगी नहीं शांति उनको कहीं भी,
जो परमात्मा को भुलाते रहेंगे।
जो जितना अधिक दान कर लेंगे जग में,
वे पुण्यों की पूँजी बढ़ाते रहेंगे।
न देंगे किसीको जो शुभ और सुंदर,
कभी बैठे माखी उड़ाते रहेंगे।
बनेंगे कभी मुक्त जीवन में वे ही,
जो चाहों को अपनी हटाते रहेंगे।
सुखी होंगे जो किसीको दुःख देकर,
वे सौभाग्य अपना घटाते रहेंगे।
उन्हें ही जगत में सभी सुख मिलेंगे,
जो दुखियों को सुख पहुँचाते रहेंगे।
उन्हींकी बनी और बनती रहेगी,
जो बिगड़ी किसीकी बनाते रहेंगे।
जो कुछ भी मिला है रहेगा न सब दिन,
जो हैं मूढ़ वे मन फँसाते रहेंगे।
'पथिक' अपने में प्रियतम को पाकर,
महोत्सव निरंतर मनाते रहेंगे।

- पथिकजी महाराज

गीता-सार

निज धर्म में तत्पर रहे, पर धर्म तजना चाहिए।
सब कर्म करके कृष्ण अर्पण, कृष्ण भजना चाहिए॥
करता कराता ईश है, निश्चय समझना चाहिए।
कर्ता स्वयं बन कर्म में, फिर क्यों उलझना चाहिए॥
मन इन्द्रियाँ सब जीत, निज उद्धार करना चाहिए।
डूबे हुए इस आपका, उपकार करना चाहिए॥
भव सिन्धु में से काढ़ कर, भव पार करना चाहिए।
हरि भक्त सद्गुरु वाक्य, कर्णाधार करना चाहिए॥
शम दम तितिक्षा आदि करके, शांत होना चाहिए।
अभ्यास कर वैराग्य कर, मन शांत होना चाहिए॥
सब भेद तज, एकत्व भज, दुःखान्त होना चाहिए।
है वहम केवल सत्य यह, सिद्धांत होना चाहिए॥
सब ब्रह्म है तो सर्व को ही, प्यार करना चाहिए।
ना बैर ईर्ष्या द्वेष नाहीं, राग करना चाहिए॥
इस देह के निर्वाह हित, व्यापार करना चाहिए।
निर्पेक्ष ज्यों व्यासादि, शिष्टाचार करना चाहिए॥

- भोले बाबाजी

सुखपूर्वक प्रसव हेतु पलाश के पत्तों के दोने में चार तोला (४६ ग्राम) तिल का तेल भरकर २१ दुर्वांकुरों द्वारा निम्न मंत्र २१ बार बोलते हुए तेल को हिलायें, फिर उसमें से कुछ तेल गर्भिणी को पिलायें व स्वयं उपवास रखकर इस मंत्र का जप करें –

हिमवत्युत्तरे पार्श्वे शबरी नाम यक्षिणी।
तस्या नुपुर शब्देन विशल्या स्यात्तुगर्भिणी॥

इससे सुखपूर्वक प्रसव होता है व प्रसव-पीड़ा शांत हो जाती है।

उपभोग नहीं, उपयोग करें...

४ नवम्बर ९८ का दिन है। पूज्य बापूजी के समक्ष बैठी विशाल जनमेदनी उनके श्रीमुख से गीता-ज्ञान का पान करने को आतुर है। महाभारत के युद्ध के समय गीता-ज्ञान का श्रवण करने का सौभाग्य अर्जुन ने पाया था और आज के चिंता-तनावों से भरे कलियुगी वातावरण में वही सौभाग्य पाने को उत्सुक हैं ये धनभागी सत्संगी!

थोड़ी देर की स्तब्धता एवं मौन के बाद शुरू हो जाती है पूज्य बापूजी की धीर-गंभीर वाणी में गीता-ज्ञान की अमृतवर्षा :

हर इंसान के पास शक्ति का अखूट खजाना है और वे शक्तियाँ हैं - करने की शक्ति, जानने की शक्ति तथा मानने की शक्ति। इनसे हम ईश्वर को जान सकते हैं, मान सकते हैं और ईश्वर के साथ एकत्व स्थापित कर सकते हैं। हमारी इन शक्तियों का जो ह्रास हो रहा है, वह किस कारण से है? भगवान श्रीकृष्ण बताते हैं :

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

'जो ये इन्द्रिय तथा विषयों के संयोग से उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं, वे यद्यपि विषयी पुरुषों को सुखरूप भासते हैं तो भी दुःख के ही हेतु हैं और आदि-अंतवाले अर्थात् अनित्य हैं। इसलिए हे अर्जुन! बुद्धिमान, विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता।'

(गीता : ५.२२)

आद्यन्तवन्तः... अर्थात् जो पहले नहीं थे और बाद में भी नहीं रहेंगे - ऐसे भोगों में जो रम जाते हैं, वे अपनी सारी शक्ति को तबाह कर देते हैं। जो उनमें नहीं रमते, वे बुद्ध पुरुष हो जाते हैं।

बुद्धू, बुद्धिमान, बुद्धिजीवी - ये सब अपनी-अपनी जगह पर हैं किंतु बुद्ध पुरुष इन सबसे न्यारे होते हैं, बोध को पाये हुए होते हैं, ब्रह्मवेत्ता होते हैं।

न तेषु रमते बुधः... यह कहने के पीछे श्रीकृष्ण का तात्पर्य यह है कि यदि आपको बुद्ध पुरुष होना है तो इन विषय-विकारों में डूबो नहीं, इनका उपभोग नहीं करो, उपयोग करो।

बहुत सुंदर बात है। उत्तम भोक्ता वही है जिसके पास त्याग का सामर्थ्य है। जो चीजें मिली हैं, उन्हें भोगकर अपने को तबाह न करो वरन् उन चीजों का उपयोग करके अपने को उनकी आसक्ति से ऊपर उठाओ। इसमें सतत सावधानी की जरूरत है और सावधानी तभी होगी, जब आप अपनी महत्ता जानोगे। किंतु भोग-वासना में गरकाब होने के कारण हम अपनी असली महत्ता को भूल जाते हैं। जैसे नाली का कीड़ा नाली में ही सुख मानता है, वैसे ही हमारा मूर्ख मन संसार के विषय-विकारों में ही सुख मानता है।

भगवान कहते हैं कि **ये हि संस्पर्शजा भोगा...** भोग आदि-अंतवाले हैं, बुद्धिमान पुरुष उनमें रमण नहीं करते।

आँख, नाक, कान, जीभ आदि इन्द्रियों का उनके विषयों से संसर्ग होने पर जो मजा आता है, केवल वही भोग है ऐसी बात नहीं है। जिस सिद्धांत को आप मानते हैं उसकी किसीने सराहना कर दी और आपको मजा आया - यह भी एक प्रकार का भोग है। बुद्ध पुरुष इनमें भी नहीं रमते।

देखिये, मगर भोगबुद्धि से नहीं। सुनिये, मगर भोग के लिए नहीं। तीन-चार तेजस्वी संतानों को जन्म भले दीजिये, लेकिन भोगबुद्धि से नहीं। धर्मात्मा लोगों को तो तीन-चार बच्चे होने ही चाहिए। एक-दो सीमा पर जायें, एक धंधा-व्यापार करे, माता-पिता की सेवा करे और एक ऐसा हो जो संतों से मार्गदर्शन पाकर भारतीय

संस्कृति की शान बुलंद करे। भोगबुद्धि से बच्चों को जन्म न देकर यज्ञबुद्धि से, देश की उन्नति के उद्देश्य से जन्म दें तो माता-पिता का जन्म देना सार्थक हो जाय।

जो पढ़े-लिखे, अच्छे-अच्छे लोग हैं, जो तीन-चार बच्चों को पढ़ा-लिखा सकते हैं, उनका भरण-पोषण कर सकते हैं उनके पास देखते हैं कि एक-एक बच्चा ही है और जिनके पास ज्यादा योग्यता नहीं है उनके पास देखो तो ५-५, ७-७ बच्चे हैं तो आगे चलकर क्या होगा ?

शादी करना पाप नहीं है लेकिन भोगबुद्धि से की गयी शादी बरबादी कर देती है। ऐसे ही खाओ तो स्वाद लेकर, किंतु साथ ही स्वास्थ्य का भी ख्याल रखो। सूँघो तो चित्त की पवित्रता के लिए, विकारों को उत्तेजित करनेवाले परफ्यूम्स सूँघकर अपने जीवन को बरबाद मत करो।

ईश्वर के ध्यान-भजन का जो सुख है वह तो शुद्ध है, बुद्धि को महान बनाता है किंतु संसार के जो भी भोग हैं उनमें तीन प्रकार के दुःख भरे हैं। पतंजलि महाराज ने कहा है कि 'इन भोगों में तीन प्रकार के दुःख हैं - परिणाम दुःख, ताप दुःख और संस्कार दुःख।'

परिणाम दुःख किसको कहते हैं ? भोग भोगते समय तो मजा आता है, किंतु परिणाम में बल, बुद्धि, तेज, तंदुरुस्ती, आयुष्य - सब क्षीण हो जाते हैं। खाते समय तो मजा आया, किंतु ज्यादा मीठा खाया तो मधुमेह हो गया... परिणाम दुःखद हो गया। फिल्म देखने में तो मजा आया किंतु ज्यादा देखने पर आँखें कमजोर हो गयीं... परिणाम दुःखद हो गया।

इन भोगों के परिणाम में दुःख छिपा है। परिणाम में दुःख मिले ऐसा काम बुद्धिमान नहीं, मूर्ख लोग करते हैं। जैसे - पतंगा परिणाम का विचार नहीं करता और रूप के आकर्षण में दिये में जल मरता है, भौंरा सुगंध में, हिरण शब्द में, मछली स्वाद में और हाथी स्पर्शसुख में फँस मरता है, ऐसे ही मूर्ख मनुष्य परिणाम का विचार किये बिना भोगों में फँस मरते हैं, फिर दुःखी होते हैं।

अतः भोगों से सावधान रहें। जो भी करें, पहले विचारें कि 'आखिर क्या ?' व्यवहार चलाने के लिए संयम से खायें-पियें, लेना-देना करें तो ठीक है लेकिन मजा लेने के लिए किया तो समझो, परिणाम दुःखद होगा।

यश का भोग मत करें, यश का सदुपयोग करें। लोग वाहवाही करें इसलिए काम न करें किंतु अच्छा काम है, सत्कार्य है तो करें। वाहवाही सुनते समय तो मजा आ गया, किंतु फिर निंदा होगी तो दुःख भी उतना ही होगा। वाहवाही के सुख का मजा न लें किंतु कोई वाहवाही करता है तो उसकी सज्जनता देखें। कोई निंदा करता है और अपनी गलती है तो सुधार लें, गलती नहीं है तो मजे में रहें।

आपका धन-दौलत, यश आदि देखकर कोई जलता है तो इसमें आपका क्या कसूर है ? बिजली चमकती है तो गधी दुलत्ती मारती है, इसमें बिजली का क्या कसूर है ? ऐसे ही आपका सुख देखकर, आपकी भक्ति देखकर कोई जले तो इसमें आपका कसूर नहीं है। आप किसीको जलाने का प्रयत्न न करें तो आप निर्दोष रहेंगे।

जो भोगों को नहीं भोगता वरन् उनका उपयोग करता है, वह महान बन जाता है। दुःख उसके पास फटक नहीं सकता। भारी-से-भारी दुःख भी उसके आगे टिक नहीं सकता और सुख के लिए उसे किसीकी गुलामी नहीं करनी पड़ती। वह परमानंद का अनुभव कर लेता है। वह इतना महान हो जाता है !

जो भी दुःख हैं, वे सब बेवकूफी का परिणाम हैं। दुःख क्यों होता है ? क्योंकि भोगों में सत्यबुद्धि करते हैं। दुःख भोगने के लिए या सुख का गुलाम बनने के लिए तुम्हारा जन्म नहीं हुआ है, तुम्हारा जन्म मुक्त होने के लिए हुआ है, सुख के लालच और दुःख के भय से बचकर परम मुक्ति का आनंद पाने के लिए हुआ है।

ये हि संस्पर्शजा भोगा...

इस श्लोक को श्रद्धा से सुनें और विचार

करें तो बहुत पुण्य होता है ।

गीता का एकाध श्लोक सुननेमात्र से कई कपिला गौ दान करने का फल मिलता है । अगर सुनने के साथ समझता भी है तो हजारों कपिला गौ दान करने का फल मिलता है और कोई समझते हुए आत्मसात् कर ले तो ब्रह्मवेत्ता बन जाय... फिर उनका दीदार करके देवता तक अपना भाग्य बना लेते हैं !

दूसरे प्रकार का दुःख है ताप दुःख। इच्छित भोग पूरे नहीं मिलते तो ताप होता है । जैसे - शराब पीना है किंतु पैसे नहीं हैं । खाना है किंतु पचता नहीं है । लड़के की शादी में खर्च करके रुआब दिखाना है किंतु क्या करें आयकरवालों का डर है । इस प्रकार का दुःख ताप दुःख कहा जाता है ।

हम चाहते तो हैं कि 'ऐसा हो जाय, वैसा हो जाय...' किंतु कर नहीं पाते अथवा तो पहले किया है लेकिन अभी नहीं कर पाते अथवा दूसरे के पास ठाट-बाट देखकर होता है कि हमारे पास नहीं है, तब भी तपन होती है ।

तीसरा है संस्कार दुःख। पुत्र, पत्नी, परिवार है किंतु कहीं झगड़ा न हो जाय... धंधा अच्छा चलता है किंतु कहीं घाटा न पड़ जाय... नौकरी में अभी तो साहब अनुकूल हैं किंतु कहीं नाराज न हो जायें... क्या पता आखिर में क्या हो जाय ? यह है संस्कार दुःख।

संसार की चीजों में ये तीन दुःख लगे ही रहते हैं । परमात्म-ज्ञान में, परमात्म-शांति में, परमात्म-आनंद में इन दुःखों का प्रवेश ही नहीं है ।

राजा भर्तृहरि राजपाट की भोग-सामग्री को इन तीन दुःखों का खजाना समझकर फकीर बन गये थे और अपनी जीर्ण-शीर्ण गुदड़ी सी रहे थे। वे सुई में धागा पिरोना चाहते थे, किंतु पिरो नहीं पा रहे थे। इतने में एक सज्जन वहाँ से गुजरे और बोले : ''आप तो सम्राट थे, अब फकीर बने हैं। यह गुदड़ी क्यों सी रहे हैं ?''

भर्तृहरि : ''यह फकीरी ऐसी-वैसी नहीं है। पूरा राजपाट देकर मैंने फकीरी धारण की है।''

''यह रेशमी शाल ओढ़ लीजिये। छोड़िये इस गुदड़ी को।''

''अगर तुम मुझे मदद करना ही चाहते हो तो मेरी बात मानो । यह शाल ले जाओ और सुई में धागा पिरो दो, बस । मैं अपनी गुदड़ी सीकर ओढूँगा । उसमें जो संतोष का आनंद है, सादगी का आनंद है वह तुम्हारी रेशमी शाल में नहीं । तुम रेशम की शाल क्या देते हो ? मैं हजारों रेशमी शालें बाँट सकता था। लेकिन राजपाट के उस ठाट-बाट में वह सुख नहीं, जो मुझे इस फकीरी में मिल रहा है । इस शरीर को ढकने के लिए यह गुदड़ी ही काफी है।''

जिनके जीवन में आत्मज्ञानरूपी सूर्य का उदय हुआ है, वे निर्धन होते हुए भी धनवानों से ज्यादा सुखी होते हैं, सत्ताविहीन होते हुए भी सत्तावानों से ज्यादा आनंदित रहते हैं । वे बिना भोग के भी परम भोक्ता होते हैं, बिना राज्य के भी परम राजा होते हैं और बिना सुख-सामग्री के परम सुखी होते हैं । ऐसे महापुरुषों के लिए ही भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥

*

भगवद्गीता ऐसे दिव्य ज्ञान से भरपूर है कि उसके अमृतपान से मनुष्य के जीवन में साहस, हिम्मत, समता, सहजता, स्नेह, शांति, धर्मपालन आदि दैवी गुण विकसित हो उठते हैं, अधर्म तथा शोषण का मुकाबला करने का सामर्थ्य आ जाता है । अतः प्रत्येक युवक-युवती को गीता के श्लोक कण्ठस्थ करने चाहिए और उनके अर्थ में गोता लगाकर अपने जीवन को तेजस्वी-ओजस्वी बनाना चाहिए ।

- परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू

कर्तव्य क्या है ?

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

वशिष्ठजी महाराज कहते हैं कि 'हे रामजी ! अपने स्वरूप का विचार करके आत्मपद को प्राप्त हो। हे कमलनयन ! यही कर्तव्य है।'

अपनी आत्मा को जान लो - यही कर्तव्य है। इसको पूर्ण करने के लिए मनुष्य-जन्म हुआ है। विचार करो कि 'मैं कौन हूँ ? क्या मैं शरीर हूँ ? क्या मैं यह उँगली हूँ ? नहीं, उँगली कट जाय फिर भी मैं रहता हूँ, हाथ कट जाय फिर भी मैं रहता हूँ, शरीर मर जाय फिर भी मैं रहता हूँ... तो मैं कौन हूँ ?' गहराई से इस प्रकार प्रश्न पूछें, श्रद्धा-भक्ति बढ़ायें, शुद्ध आचार करें और ब्रह्मचर्य का पालन करें। इससे बुद्धि में प्रकाश आयेगा।

कर्तव्य की स्मृति विवेकरूपी प्रकाश में ही आती है। उस स्मृति में अविचल आस्था रखें। अविचल आस्था रखनेवाला कर्तव्यपालन में सफल हो जायेगा।

जो सेवा करें, तत्परता से करें। कर्तव्यपालन से रागरहित अवस्था आती है। रागरहित अवस्था आने से शांति आती है। शांति से सामर्थ्य उभरता है। सामर्थ्य का सदुपयोग करने से जहाँ कोई दुःख नहीं है, जहाँ मौत नहीं आती, उस ब्रह्मस्वरूप की प्राप्ति में साधक सफल हो जाता है।

'हे रामजी ! कर्तव्य यही है कि गुरु और शास्त्रों के वचनों को धारण कर जगतभ्रम से मुक्त हों।'

जगत एक भ्रम है, भ्रांति है। इसको सच्चा मानते हो तभी दुःख होता है। आत्म-अभ्यास से शांत पद प्राप्त होता है। अपना-पराया छोड़कर बुद्धि को भगवान में लगाना चाहिए। शत्रु का चिंतन करते-करते बुद्धि में शत्रु घुस जाता है, मित्र का चिंतन करते-करते बुद्धि में मित्र घुस जाता है। बुद्धि को इधर-उधर क्यों लगायें ? गुरु से जो सुना है और शास्त्रों में जो पढ़ा है, उसीमें अपनी बुद्धि लगायें।

'हे रामजी ! मन की वृत्ति इष्ट या अनिष्ट को ग्रहण करती है और खड्ग की धारवत् तीक्ष्ण है। इसमें तुम प्रीति मत करो। जो वृत्ति शुभ क्षेत्र और शुभ काल से प्राप्त हुई है, उसे विवेकरूपी जल से सींचो तब परम पद की प्राप्ति होगी। जब तक शरीर मलिनता को प्राप्त नहीं हुआ और जब तक पृथ्वी पर नहीं गिरा, तब तक बुद्धि को उदार करके ईश्वर को खोजते-खोजते बुद्धि को ईश्वरमय बना लो।'

स्थूल शरीर तो मर जायेगा और आत्मा तो अमर है। फिर दुःख किसको होता है ? - अंतःकरण को, मन-बुद्धि को। उसी मन-बुद्धि में भगवद्भाव बिठा दो तो काम बन जाय।

वशिष्ठजी महाराज कहते हैं : 'जैसे ब्रह्मास्त्र से ब्रह्मास्त्र छिदता है, वैसे ही मन से मन को छेदो अर्थात् अंतर्मुख हो जाओ, तब तुम्हारा चित्तरूपी वानर स्थिर होगा। जब तुम्हारा चित्तरूपी वानर स्थिर होगा, तब तुम्हारा शरीररूपी वृक्ष क्षोभ से रहित होगा। शुद्ध बोध से मन को जीतो और यह जगत, जो तृण से भी तुच्छ है, उससे पार हो जाओ। हे रामजी ! तुम हाथ से हाथ दबाकर, दाँतों से दाँतों को भींचकर, अंग से अंग को रोककर इन्द्रियों को जीत लो।

इन्द्रियाँ बड़ी दुष्ट और कृतघ्न हैं। ये जिस-जिसके आश्रय में रहती हैं उसको शोक और इच्छा से पूर्ण करती हैं। ये महादुष्ट और दुःखदायक भंडार हैं। इनको तुम जीतो। हे रामजी ! जो पुरुष ज्ञान के धन से संपन्न है और देहरूपी देश में रहता है वह परम शोभा पाता है।'

जो आत्मज्ञानरूपी धन से संपन्न हैं और शरीररूपी घर में रहते हैं वे शोभा पाते हैं। वे मजे

से जीते हैं। उनकी आजीविका बड़ी सरलता से होती है। रोजी-रोटी के लिए उन्हें कहीं गिड़गिड़ाना नहीं पड़ता कि 'हे देवी ! तू दया करना... हे देवता ! तू दया करना, हमारे पाप मिटाना...' वे दूसरों के दुःख दूर करते हैं किंतु किसीसे माँगते नहीं हैं। शिष्टाचार के लिए तो भले कह दें कि 'आप सबकी कृपा है जो आप सब नीचे बैठे हैं और हमें ऊपर बिठाया है।' बाकी वे जानते हैं कि क्या ऊपर, क्या नीचे ? ऊपर-नीचे यह मन की कल्पनामात्र है।

जिनको आत्मज्ञान नहीं हुआ है वे चाहे कितने भी विद्वान हों, तीसमारखाँ हों, आत्मसाक्षात्कारी महापुरुष के आगे सब बबलू हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश तो ज्ञानियों का अपना आत्मा हो जाता है। ज्ञानी महापुरुष अपने एक शरीर में तो क्या, भारत में, दुनिया में तो क्या, पूरे ब्रह्मांड में भी नहीं समाते हैं। ऐसे होते हैं ज्ञानी महापुरुष ! ब्रह्मांड तो उनके आत्म-उदर में होता है। ये तो शब्द हैं, अनुभव की बात तो वे ही जानते हैं।

किसीसे सेवा न लें

आप अपने शरीर की सेवा जितनी दूसरों से लेंगे, अंदर में उतनी पराधीनता रहेगी।

जितना हो सके अपनी आवश्यकताएँ कम रखें।

एक बार मैं गुरुदेव के कपड़े धोने चला गया। गुरुदेव ने खूब जोर-से डाँटा कि 'मेरे हाथ हैं।' हालाँकि उस वक्त गुरुदेव की उम्र ८७ वर्ष के आस-पास की थी, फिर भी व्यक्तिगत सेवा अधिक नहीं लेते थे।

- परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू

सबसे ऊँची प्रेम सगाई...

[गुरु गोविंदसिंह जयंती - २९ दिसम्बर]

संसार के सब सम्बन्ध स्वार्थ की जंजीर से बँधे हैं। स्वार्थ के वश होकर जो प्रेम की धारा बहती है वह प्रेम नहीं, परंतु मोह है। प्रेम की भव्य इमारत अभिमान पर नहीं, वरन् समर्पण की नींव पर ही टिक सकती है।

यमुना के पावन तट पर सिक्खों के दसवें तथा अंतिम गुरु गोविंदसिंहजी अपनी ज्ञानवारि से श्रोताओं के हृदयों को आप्लावित कर रहे थे। सत्संग पूरा होने पर बारी-बारी से सभी श्रोता गुरु-चरणों में भेंट रखने लगे।

इस सत्संग में राजा रघुनाथसिंहजी भी आये थे। उन्होंने भी गुरुचरणों में रत्नजड़ित स्वर्ण के दो कंगन रखे। गुरु गोविंदसिंह ने उन कंगनों पर दृष्टि डालते हुए रघुनाथसिंह से कहा :

''रघुनाथसिंह ! सूर्य के प्रकाश में ये कंगन कितने चमक रहे हैं ! लगता है पानी से धोने पर इनकी चमक और बढ़ जायेगी।'' यह कहकर गुरु गोविंदसिंहजी अपने आसन पर से उठे और यमुना के जल से कंगनों को धोने गये तो एक कंगन उनके हाथ से पानी में गिर गया।

रघुनाथसिंह के मुख से सहसा निकल गया : 'अरे ! इतना कीमती कंगन आपके हाथों से गिर गया ! कारीगरों ने कितनी मेहनत से उसे बनाया था। उसके लिए खर्च भी बहुत हुआ था।' यह कहकर रघुनाथसिंह कंगन को खोजने के लिए यमुना में कूद पड़े। काफी मेहनत करने के बाद भी कंगन उनके हाथ न लगा। तब बाहर आकर

उन्होंने गुरु गोविंदसिंह से पूछा : ''क्या आप बतायेंगे कि कंगन किस जगह पर गिरा था ?''

रघुनाथसिंह जब भेंट रखने आया था, तभी गुरुजी को पता चल गया था कि अपने धन-वैभव के प्रदर्शन के लिए ही रघुनाथसिंह यह भेंट लाया है । उन्होंने यमुना में दूसरा कंगन फेंकते हुए कहा : ''जहाँ यह दूसरा कंगन फेंका, वहीं पर पहला गिरा है ।''

रघुनाथसिंह का अभिमान चूर-चूर हो गया। कुछ भी कहे बिना वह चुपचाप अपने आसन पर जा बैठा।

गुरु गोविंदसिंह चलते-चलते श्रोताओं की अंतिम पंक्ति के पास पहुँचे और एक वृद्धा के पास जाकर बोले : ''माँ ! मेरे लिए क्या लायी हो ?''

वृद्धा तो क्षणभर के लिए मान ही न पायी कि यह सत्य है । गुरु स्वयं चलकर उसके पास आये हैं ! फिर से गुरुजी ने कहा : ''माँ ! तुम्हारी भेंट स्वीकार करते हुए मुझे आनंद मिलेगा।''

वृद्धा ने खूब संकोच के साथ कहा : ''मेरी भेंट तो बड़ी तुच्छ है । आज घर से निकलते समय मुझे विचार आया कि 'आप हमें सत्संग सुनाते हैं, इससे आपके गले को बड़ा श्रम पड़ता होगा । सत्संग के पहले यदि आप थोड़ा दूध पी लें तो गला ठीक रहेगा ।' इसलिए गाय का थोड़ा-सा दूध गर्म करके मिश्री डालकर आपके लिए लायी हूँ और थोड़े-से फल भी लायी हूँ। आपके श्रीचरणों में यह तुच्छ भेंट धरने की इच्छा सत्संग के प्रारंभ से ही हो रही थी, किंतु फिर आपके चरणों में कीमती-कीमती भेंटें चढ़ने लगीं । उसमें भी कीमती रत्नजड़ित कंगनों को भेंट में चढ़ते देखकर मुझे मेरी भेंट तिनके की तरह तुच्छ लगी ।''

वृद्धा की तरफ स्नेह से निहारते हुए गुरु गोविंदसिंहजी ने कहा : ''मेरे सामने भेंट का जो यह ढेर लग गया है, उसमें कीमती सामान, वस्त्र-अलंकार आदि भले हों, किंतु माँ ! तुम्हारे दूध में जो मिठास है वह उनमें कहाँ ।''

ऐसा कहकर गुरुजी ने वृद्धा माँ के हाथ से दूध का लोटा ले लिया और मुँह से लगा दिया। फिर फल की गठरी भी ले ली । अपनी भेंट को स्वीकार होते देखकर वृद्धा की आँखों से हर्ष के आँसू बह चले...

गुरु गोविंदसिंह पुनः अपने आसन पर जा विराजे और बोले : ''भेंट का मूल्य उसकी कीमत से नहीं आँका जाता, वरन् उसमें निहित प्रेम से आँका जाता है । आज इस दूध के सेवन से मुझे इतना आनंद मिला है कि उसके सामने स्वर्ग का सुख भी तृण के समान है । उसमें माँ की ममता मिली हुई है । माँ ! तुम्हारे जैसे भक्त ही धर्म का गौरव हैं । तुम भले मुझे गुरु जैसा आदर देती हो किंतु मेरे लिए तुम पूजनीया हो ।''

*

माता-पिता और गुरुजनों को संतोष हो, उनका हृदय प्रसन्न हो, ऐसा हमारा व्यवहार होना चाहिए । अपने माता-पिता और गुरुजनों को संतुष्ट रखकर ही हम सच्ची प्रगति कर सकते हैं ।

मनुष्यमात्र का कर्तव्य है कि वह परमानंदस्वरूप आत्मा-परमात्मा की शांति, भगवत्प्रेम, शाश्वत सुख, निजानंदरूप महान लक्ष्य पर दृष्टि स्थिर करे । भगवत्प्राप्ति या भगवत्प्रेम-प्राप्ति को ही जीवन का एकमात्र महान लक्ष्य समझे ।

ऐ मानव! तुझमें अपूर्व शक्ति, सौंदर्य, प्रेम, आनंद, साहस छुपा है । घृणा, उद्वेग, ईर्ष्या, द्वेष और तुच्छ वासनाओं से तेरी महत्ता का ह्रास होता जा रहा है । सावधान हो भैया ! कमर कस । अपनी संकीर्णता और अहंकार को मिटाता जा । अपने दैवी स्वभाव, शक्ति, उल्लास, आनंद, प्रेम और चित्त के प्रसाद को पाता जा ।

- परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू

निष्काम कर्मयोग

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

करने की शक्ति का सदुपयोग निष्काम कर्मयोग है। निष्काम कर्म तत्परता से करें। सुख लेने का जो लालच है, वही दुःख को ले आता है। इसीलिए सुख लेने का लालच मिटाने के लिए निष्काम कर्म करने की आदत डालें।

निष्काम कर्मयोग अपने-आपमें स्वतंत्र योग है। कर्म तो करें किंतु सुख लेने के लालच से करोगे तो बंधन बढ़ता जायेगा। बड़ा होने के लालच से करोगे तो फँस मरोगे। लोग ढिंढोरा पीटते हैं निष्काम कर्म का, किंतु अंदर में बड़ा होने की वासना होती है। अरे ! प्रधानमंत्री पद भी पा लिया तो क्या ? आखिर में देखो तो बेचारों की दयाजनक हालत हो जाती है।

संसारी ढंग से बड़ा बनने की इच्छा से जो कर्म किये जाते हैं अथवा सुख लेने की इच्छा से जो कर्म किये जाते हैं, वे कर्म प्राणी को बंधन में बाँधते हैं। इसलिए सुख लेने की इच्छा या बड़ा कहलाने की इच्छा मिटाते जायें और सत्कर्म करते जायें तो कर्म के फल का प्रवाह अपनी तरफ नहीं आयेगा वरन् संसार की तरफ जायेगा।

दफ्तर का फर्नीचर मेज-कुर्सी, पंखा आदि दफ्तर में काम करने के लिए होता है, उठाकर घर ले जाने के लिए नहीं होता। ऐसे ही इस शरीर की जो भी योग्यताएँ हैं वे संसारोपयोगी काम करने के लिए हैं। जो इन्हें मेरा मानेगा वह फँसेगा। अपने चित्त में 'मैं-मेरा' कुछ न रखें किंतु यदि कोई 'मेरा नहीं है...' ऐसा सोचकर लापरवाही करेगा तो कर्मभ्रष्ट हो जायेगा। कोई सत्कार्य अपना न होते हुए भी जो तत्परता से करेगा, उसका कर्मयोग हो जायेगा।

दफ्तर में काम सरकार के लिए किया जाता है और वेतन अपने लिए होता है। ऐसे ही यदि हम संसाररूपी दफ्तर में ईश्वर के लिए काम करते हैं तो अपने लिए मुक्तिरूपी वेतन मिलता है। काम करते हैं तो वेतन मिलता है, ऐसे ही निष्काम कर्म करेंगे तो मुक्ति मिलेगी। ज्यों-ज्यों निष्काम कर्म करेंगे त्यों-त्यों हृदय विशाल बनेगा।

जिनके जीवन में निष्काम कर्म नहीं है, उनका अंतःकरण शुद्ध नहीं होगा। जिनका अंतःकरण शुद्ध नहीं होता, वे चाहे कितना भी वेदान्त पढ़ें, तोते जैसा रटते रहें, उनके शरीर का अंत हो जायेगा किंतु करने की आसक्ति का अंत नहीं होगा।

यदि मनुष्य को मुक्ति का रस नहीं मिलेगा तो वह भोगों से रस लेगा। भोगों का रस भोगते-भोगते उसकी भोग के रस की वासना बढ़ती जायेगी, जिससे रस भोगने की इन्द्रियाँ शिथिल हो जायेंगी। आखिर उसका शरीर काँपने लगेगा लेकिन इच्छाएँ-वासनाएँ उसे संसाररूपी दलदल में फँसाती रहेंगी। उसे इच्छा-वासना से पार ले जानेवाले महापुरुष अच्छे नहीं लगेंगे किंतु इच्छा पोसनेवाले खुशामदखोर अच्छे लगेंगे।

काम तो अज्ञानी मूढ़ भी करता है और साधक भी करता है। साधक का काम सेवा बन जाता है, परमात्म-प्राप्ति का साधन बन जाता है। एक वे होते हैं जो अपने लिए काम करते हैं। वे संसार की तरफ जाते हैं। दूसरे वे होते हैं जो विशाल दृष्टिकोण रखकर संसार के लिए, बहुतों के लिए काम करते हैं। वे अपने को ईश्वर में ले आते हैं। तीसरे वे होते हैं जो आलसी होते हैं, अपना वक्त

ऐसे ही गँवा देते हैं। **अतो भ्रष्टः ततो भ्रष्टः।** वे इस लोक में भी धन-वैभव नहीं पाते और परलोक में भी शांति नहीं पाते। जो आलसी होता है उसका तेज, बल, बुद्धि, तंदुरुस्ती और पुण्य नष्ट हो जाता है।

जो निःस्वार्थ भाव से संसार के लिए उद्यम करता है, वह अपने को अपने में ले आता है। कर्म के फल की आसक्ति मिटेगी तो कर्तृत्व मिटेगा। करने का भी राग मिटेगा और भोगने का भी। करने और भोगने का राग मिटेगा तो वीतराग हो जाओगे। वीतराग हुए तो भय भी चला जायेगा। जिसको राग नहीं है उसको भय कहाँ ? जिसको राग नहीं है उसको क्रोध कहाँ ? **वीतरागभयक्रोधा...** वह मोक्षपरायण हो जायेगा, मननशील महापुरुष बन जायेगा, सब बंधनों से सदा के लिए छूट जायेगा।

करने का राग मिटाने के लिए निष्काम कर्म करें। भोगने का राग मिटाने के लिए दूसरों को सुख दें। इससे आपका अपना सुख प्रकट होगा। दूसरों की भलाई के काम करने से अपने हृदय में भलाई का भाव आ जायेगा। ईमानदारी से भलाई के दैवी कार्यों में साझेदार होने से सुख मिलता है।

करने और भोगने की आसक्ति मिटने पर आप अनासक्त हो जाओगे। अनासक्ति आत्मा का स्वभाव होता है, अतः आप अपने आत्मस्वभाव में आ जाओगे।

अनासक्ति बढ़ती जाय तो आपका कर्म निष्काम है और आसक्ति बढ़ती जाय तो आपका कर्म सकाम है। सकाम कर्म करना अपने को धोखा देना है।

सत्य के लिए जो कर्म किया जाता है वह सत्कर्म है। अथवा जो सत्यस्वरूप की ओर ले जाय, शाश्वत सुख, शाश्वत ज्ञान, शाश्वत जीवन की ओर ले जाय उसको सत्कर्म कहते हैं।

जो भी सत्कर्म करें, तत्परता, सेवाभाव, निष्काम भाव और ईमानदारी से करें तो हृदय विशाल होगा। कर्तापन छोड़ दें और जहाँ से करने की शक्ति आती है उसका ज्ञान पा लें।

जिसने अपना आत्मसुख नहीं पाया वह दूसरों को सुखी कैसे कर सकता है ? जो अपने-आपकी सेवा नहीं कर सका, वह दूसरों की सेवा में सफल कैसे हो सकता है ? इसीलिए अपने-आपकी सेवा कभी नहीं भूलनी चाहिए। इन्द्रियों की सेवा करो, मन-बुद्धि की सेवा करो अर्थात् उनको आत्मसुख दो, तब वे दूसरों की सेवा करने के लायक बनेंगे।

सेवा में दोष क्यों आते हैं ? बल या सत्ता का दुरुपयोग करने से और विवेक का अनादर करने से सेवा में दोष आ जाते हैं। बल का दुरुपयोग क्या है ? बल का उपयोग जब अहं पोषने में होता है तो यह बल का दुरुपयोग है और जब अहं का विसर्जन करने में होता है तो यह बल का सदुपयोग है। यदि अहं का ईश्वर में विसर्जन होता है तो यह विवेक का आदर हुआ और यदि अहं का सर्जन होता है तो यह विवेक का अनादर हुआ।

विवेक और बल का सदुपयोग कैसे करें ? सत्यस्वरूप में गोता मारकर फिर निर्णय लें। सत्शास्त्र और सत्यस्वरूप ईश्वर का आश्रय लेकर फिर काम करें तो बल का सदुपयोग और विवेक का आदर होगा। बल का सदुपयोग और विवेक का आदर हो गया तो समझो, काम बन गया...

*

सेवाधारियों व सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनी ऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें। (२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरुआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।

एक अनोखा रिश्ता

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

स्वामी शरणानंद महाराज ने बतायी थी एक घटना :

अयोध्या के कनकभवन में आकर एक सज्जन रघुनाथ सरकार को देखते और चल देते। पुजारी और दूसरे लोगों को बड़ा आश्चर्य होता कि 'ये कैसे दर्शनार्थी हैं ! न सिर झुकाते हैं, न फूल-पत्ती चढ़ाते हैं, न प्रसाद चढ़ाते हैं और न ही प्रणाम करते हैं !'

एक दिन पुजारी ने उनसे पूछ ही लिया तो उन्होंने कहा : ''ये आपके भगवान हैं, मेरे नहीं।''

''फिर आप दर्शन करने क्यों आते हैं ?''

''दर्शन करने नहीं, देने को आता हूँ।''

लोगों के कान खड़े हो गये किंतु सज्जन के कहने में दम था।

''दर्शन देने को आते हैं ? आप ऐसे कौन-से बड़े आदमी हो गये कि हमारे सरकार को दर्शन देने के लिए आते हैं। आपका सरकार के साथ क्या सम्बन्ध है ?''

वे सज्जन बताना नहीं चाहते थे। उन्होंने बहुत टाला कि ''कोई सम्बन्ध है जिसे हम जानें और आपके सरकार जानें। हमारा अपना अंदर का रिश्ता है।''

जब पुजारी ने बहुत अनुनय-विनय किया, तब उन सज्जन ने कहा : ''जो तुम्हारे सरकार हैं, वे मेरे शिष्य लगते हैं।''

यह सुनकर लोगों को और ठेस पहुँची। उन्होंने कहा : ''कोई साधारण आदमी होता तो हम कहते कि पागल हो गया है। किंतु आप हँसी के योग्य नहीं हैं। आपकी आभा, आपका व्यक्तित्व देखकर हम आपका मजाक नहीं उड़ा सकते किंतु हमको विश्वास नहीं होता कि आपका और हमारे सरकार का गुरु-शिष्य का सम्बन्ध है।''

''छोड़ो फिर।''

''नहीं, हमें संतोष हो ऐसा कोई चमत्कार दिखायें, परिचय दें।''

''ठीक है। कल मिल जायेगा।''

दूसरे दिन रोज की तरह वे सज्जन आये लेकिन ताजे पुष्पों की माला अपने गले में पहनकर आये और मंदिर में अंदर तक चले गये। पुजारी दौड़ा-दौड़ा आया। पिछले दिन वे सज्जन कहकर गये थे इसलिए उस समय दूसरे दर्शनार्थी भी इंतजार में थे।

सज्जन गुरु के रूप में हैं तो श्रीरामजी का शिष्यत्व भी पूरा है। जैसे ही वे माला उतारकर रामजी की तरफ करने जा रहे थे कि रामजी ने सिर झुकाते हुए हाथ लम्बे किये और प्रसाद के रूप में माला स्वीकार कर उसे सिर-आँखों से लगाया।

किसीका पाप जोर मार रहा होगा तो वह इस बात को झूठी मानेगा किंतु पुण्यात्मा इसे झूठी नहीं मान सकता। स्वामी रामकृष्ण परमहंस के संकल्प से अगर काली माँ मूर्ति से प्रकट हो सकती हैं, नरो नाम की अहीर की कन्या के संकल्प से अगर नाथद्वारे के श्रीनाथजी दूध का कटोरा लेने के लिए हाथ लम्बा कर सकते हैं, गोपियों के संकल्प से अगर छछियन भरी छाछ के निमित्त भगवान नाच सकते हैं तो शिष्य बनकर माला लेना उनके लिए क्या कठिन है ?

✲

श्री उड़िया बाबा

[गतांक से आगे]

होलिकोत्सव सानंद समाप्त हुआ। पूजनीया माँ अपने भक्तोंसहित चली गयीं और स्वामी अखण्डानंदजी कुछ प्रेमियों के आग्रह से अमृतसर चले गये। इन दिनों आपश्री की विनोदवृत्ति कुछ बढ़ गयी थी। कुछ सिंधी भक्तों ने एक हलकी रंगीन गदा-सी लाकर रख दी थी। आप उससे खेल करते रहते थे। आप मुख्यतया श्री पल्टू बाबा से अधिक छेड़छाड़ करते थे। इन दिनों वे आपसे कुछ रूठे हुए थे और आश्रम में भोजन न करके नगर से मधुकरी करके लाते थे।

गोवर्धन से पं. गया प्रसादजी आपके पास आये हुए थे। आपने उनसे कह दिया था : 'मैं गोवर्धन चलूँगा।' बात बड़ी पक्की-सी कह रहे थे। कभी-कभी आप गाते भी थे : 'गोवर्धन कूँ जाऊँ मेरे वीर, ना माने मेरो मनुआँ।' किंतु मुझे आपकी यह बात विनोदमात्र ही जान पड़ती थी। मैंने कहा : ''तो फिर वहाँ जाने का दिन भी निश्चित कर दीजिये।'' आप बोले : ''मंगलवार को जाऊँगा।'' मैंने कहा : ''अभी आपको दुबर्लता अधिक है, ज्वर से छुटकारा मिले थोड़े ही दिन हुए हैं, इसलिए नवरात्रों के पश्चात् जब कुछ शक्ति आ जाय तब जायें।'' आपने मेरी बात मान ली।

पूज्य श्री हरिबाबाजी को ब्रह्मचारी श्री प्रभुदत्तजी ने झूँसी में आमंत्रित किया था, इसलिए वे रविवार के दिन वहाँ जानेवाले थे। रविवार के दिन प्रातःकाल मैं भी हाथरस चला गया और सायंकाल में बाबा ने यहाँ से प्रस्थान किया। आपने स्वयं मोटर तक जाकर बाबा को विदा किया। ऐसा आप कभी नहीं करते थे।

अगले दिन सोमवार को वि.सं. २००५ की चैत्र कृष्ण चतुर्दशी थी। किसको पता था कि आज अपने ही वार और अपनी ही तिथि में ये जंगम 'शिव' अपने स्वरूप में लीन होना चाहते हैं, वह भी ऐसे मर्मभेदी ढंग से जिसकी किसीको कभी स्वप्न में भी कल्पना नहीं थी, जिसका चित्र सामने आते ही हृदय चित्कार कर उठता है, शरीर सुन्न हो जाता है और मस्तिष्क घूमने लगता है।

प्रातःकाल पौन घण्टे तक श्री महाराजजी ने गीता के दो श्लोकों की व्याख्या की। वे श्लोक हैं :

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥
अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥

(गीता : २.२७,२८)

श्रोताओं का कहना था कि ऐसी व्याख्या पहले आपके मुख से बहुत कम सुनी गयी थी। मध्याह्नोत्तर ढाई बजे से सत्संग प्रारम्भ होता था। उसके पहले आप लघुशंका से निवृत्त होकर बाहर आये, सामने स्वामी प्रबोधानंदजी खड़े थे। पेड़ की ओर इशारा करते हुए आपने उनसे कहा : 'प्रबोधानंद ! देख सामने के वृक्ष पर गिद्ध बैठा है, मालूम होता है यहाँ श्मशान होगा।' उन्होंने आपके इस कथन पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। तत्पश्चात् आप बगल में 'श्रीरामचरितमानस' की नयी पोथी दबाकर कथामण्डप में आ गये। उसी पोथी से उस दिन 'श्रीरामायण' का गायन हुआ।

उसके पश्चात् श्री आनंद ब्रह्मचारी ने प्रभुदत्तजी की 'भागवती कथा' पढ़नी आरम्भ की। आप समाधिस्थ होकर बैठ गये। इस प्रकार तो आप सर्वदा ही बैठते थे किंतु आज की समाधि कुछ विशेष गम्भीर थी। आज आप अत्यंत निश्चल भाव से बैठे हुए थे। स्वामी अद्वैतानंद पीछे खड़े चँवर डुला रहे थे। अनेक श्रोता कथा सुन रहे थे। इतने में ही पीछे से ठाकुरदास आया। उसने

अद्वैतानंदजी से चँवर माँगा, किंतु उन्होंने नहीं दिया। इस पर वह वहाँ से चला गया तथा दस मिनट में पुनः लौट आया और पीछे से ही उसने आपश्री के सिर पर एक गँड़ासे के द्वारा बड़ी तेजी से तीन वार कर दिये और भाग गया। यह घटना इतनी तेजी से हुई कि उपस्थित लोगों की समझ में कुछ भी न आया कि क्या हो रहा है। पहले वार से चोट लगने पर आपश्री का हाथ सिर पर गया और उसकी भी एक उँगली कट गयी।

अब लोगों को पता चला कि क्या हो रहा है। कुछ ने तो आपश्री को सँभाला और कुछ ठाकुरदास के पीछे भागे। उन्होंने उसे पकड़कर उसी गँड़ासे से समाप्त कर दिया। इधर श्री महाराजजी उसी शांत मुद्रा में मूर्च्छित हो गये। उनके मुख से कोई शब्द नहीं निकला। डॉक्टरों को बुलाने के लिए दौड़धूप होने लगी। किंतु घाव चार इंच गहरा था। अब कोई उपाय नहीं हो सकता था। एड्रीनेलीन इंजेक्शन देने पर आपको थोड़ा होश आया। फिर आप शांत हो गये। थोड़ी देर में सब लीला समाप्त हो गयी। अब रह गया केवल भक्तों का रोना-बिलखना।

आज संवत्सर का अंतिम दिन था, संवत्सर के अंत के साथ-साथ इस विलक्षण नाटक का भी अंत हो गया। श्री यमुनाजी की गोद में आपको जल-समाधि दी गयी और सबके देखते-देखते वह चिरपरिचित मधुर मूर्ति सदा-सदा के लिए नेत्रों से ओझल हो गयी।

उपसंहार

पूज्य श्री उड़िया बाबा का सारा जीवन एक आध्यात्मिक शूरवीर का जीवन है। आपने सिद्ध गुरु की खोज में सारे भारत का भ्रमण किया, तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के लिए कड़ी-से-कड़ी तपस्या की, निवृत्ति का आदर्श उपस्थित करने के लिए अहर्निश समाधि-निष्ठा में स्थित रहे। फिर जब लोक कल्याण के लिए भक्तों और जिज्ञासुओं के बीच में आये तो कभी अपनी सुविधा का विचार नहीं किया, रुग्णावस्था में कभी रोग की ओर नहीं देखा तथा बड़े-बड़े प्रलोभनों के बीच रहकर भी कभी उनका स्पर्श नहीं किया। अंत में इस नाटकीय ढंग से अपनी जीवनलीला को समाप्त करके भी शरीर की तुच्छता और जीवन की अस्थिरता का ही उपदेश दिया। इससे आपकी विलक्षण समता भी सूचित होती है। आपने यह दिखा दिया कि जिस मस्तक पर पुष्प चढ़ाये जाते हैं, उसी पर शस्त्रप्रहार भी हो सकता है। जिसके लिए लोग प्राण न्योछावर करने को तत्पर रहते हैं, उसीके प्राणों के ग्राहक भी हो सकते हैं और जिसका जीवन संसार में अत्यंत मूल्यवान समझा जाता है, वही किसीके लिए सर्वथा असह्य हो सकता है। अतः किसी भी मनुष्य को भूलकर भी अपने बाह्य वैभव से अपना मूल्य नहीं आँकना चाहिए, प्रत्युत मान-अपमान, सुख-दुःख एवं सम्पत्ति-विपत्ति आदि द्वन्द्वों की उपेक्षा करके सर्वदा अपने लक्ष्य पर दृष्टि रखनी चाहिए और निरंतर अपनी निष्ठा में स्थित रहना चाहिए। यही आपके सम्पूर्ण जीवन का सार और आपकी अंतिम शिक्षा है।

सचमुच आत्मारामी संतों का अनुभव ही सचोट होता है, बाकी तो सब लोग मन-इन्द्रियों के जगत में अपने-अपने मत-पंथ-मजहब को महत्त्व देकर अपनी मान्यता पुष्ट करते हैं। सत्य मान्यताओं के आधार पर नहीं टिका होता परंतु जो मन तमाम मान्यताएँ मानता है, उसको जहाँ से सत्ता-स्फूर्ति मिलती है वह है अबाधित सत्यस्वरूप आत्मदेव। उसीमें महापुरुष विश्रांति पाये हुए होते हैं एवं उन्हींके द्वारा समाज का वास्तविक हित होता है। *(समाप्त)*

महत्त्वपूर्ण निवेदन

सदस्यों के डाक-पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य १३४वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया दिसम्बर २००३ के अंत तक अपना नया पता भेज दें।

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

डाकू का जीवन-परिवर्तन

संत रविदासजी के दर्शन करने भक्तमंडली जा रही थी। संयोगवश डाकू काबा भी उसी रास्ते से गुजर रहा था। भक्तमंडली का कीर्तन की मस्ती में झूमना-गाना देखकर वह दंग रह गया। उसने सोचा कि 'मैं डाका डालकर इतने पैसे कमाता हूँ, इतना सोना-चाँदी-जवाहरात लूटता हूँ फिर भी मेरे हृदय में शांति नहीं है, प्रसन्नता नहीं है और ये भक्त लोग इन सबके बिना ही इतना आनंद ले रहे हैं ! चलो, थोड़ा चलते हैं।'

डाकू काबा भी वेश बदलकर उनके पीछे चल पड़ा। थोड़ा चला तो उसे मजा आने लगा। धीरे-धीरे वह रविदास के द्वार तक पहुँच गया और चुपके-से संत रविदास महाराज के दर्शन करके वापस लौट गया।

साधु के दर्शन व्यर्थ कैसे जाते ? साधु का क्षेत्र, साधु का आश्रम, साधु की प्रभावशाली आभा एवं साधु की निगाह उस डाकू के चित्त में थोड़ी-थोड़ी जगह लेने लगी... भगवान और साधु उस मनलगे अतिथि जैसे होते हैं।

एक मनलगा साधु था। एक बार बारिश आने पर उसने किसीका दरवाजा खटखटाया और बोला : ''भाईसाहब ! भाईसाहब ! दरवाजा खोलो।''

घर के मालिक ने दरवाजा खोला और देखा कि एक साधु खड़े हैं। उसने पूछा : ''बाबाजी ! क्या बात है ?''

''बारिश हो रही है। जरा, अंदर बैठने दो।''

''अच्छा, बाबाजी ! बैठिये।''

फिर धीरे-धीरे बाबाजी ने पैर पसारे और कहा : ''बेटा ! जरा तकिया दे दो न !''

उस व्यक्ति ने तकिया दे दिया और बाबाजी आराम से सों गये। सुबह होने पर बाबाजी ने स्नान आदि किया, फिर कहा : ''थोड़ा नाश्ता ले आओ।''

नाश्ता करके बाबाजी ने घरवालों से पूछा : ''आप लोगों को कहाँ जाना है ?'' मतलब, घर तो मेरा है !

ऐसे ही संतों की प्रभावशाली तरंगें, उनकी कृपा जब आपके हृदय में आ जाती है तो फिर धीरे-धीरे वह अपने पैर पसारती है और आपके काम-क्रोध-लोभ को बोलती है : 'जाओ, अब यह घर तो मेरा है।'

संत रविदास की डाकू पर निगाह पड़ी और भक्तों के सान्निध्य का लाभ मिला किंतु खूँखार डाकू अपना पुराना धंधा एकाएक कैसे छोड़ता ? किसीको भी मार्ग से आते-जाते देखता तो अपना जाल फैलाता।

एक संध्या को एक दुल्हा-दुलहन बाबा के यहाँ जा रहे थे। डाकू ने अपना शिकार देखा। वह नजदीक गया और उनसे पूछा : ''कहाँ जा रहे हो ?''

उस दुल्हा-दुलहन ने कहा : ''संत रविदास साहब के दर्शन करने के लिए जा रहे हैं।''

डाकू को अपना बेटा नहीं था। उसका हृदय पलट गया। उसने पूछा : ''बेटा ! क्या ले जा रहे हो ?''

''मिठाई है। बाबा के यहाँ संतमंडली आयी है। सब कुंभ मेले में जानेवाले हैं।''

डाकू ने सोचा कि 'इतने सारे संत बाबा के यहाँ आये हैं तो खर्चा-पानी चाहिए होगा।' डाकू ने उसे अशर्फियों की थैली देते हुए कहा : ''बेटा ! बाबाजी के चरणों में रखना, फिर मत्था टेकना।''

डाकू को ऐसा आनंद आया मानों, उसका अपना बेटा संत के द्वार जा रहा हो !

बाबा ने अशर्फियाँ उन्हींको लौटाते हुए कहा : ''हम नहीं लेते। प्रसाद समझकर ले जाओ।

जिसकी थीं उसको दे देना। हमें नहीं चाहिए।''

डाकू को उसकी अशर्फियाँ लौटा दी गयीं। आखिर डाकू काबा खुद आया। संत रविदास के आगे उसने खुद अशर्फियाँ रखीं।

संत रविदास : ''ले जा। यदि हम तेरे पाप की कमाई अभी रख लेंगे तो कल तू दूसरों का गला काटेगा, दूसरों का खून चूसेगा। खून से सने हुए तेरे ये पैसे हमारे काम नहीं आयेंगे। तू अपने कर्मबंधन को बढ़ा और अपने कर्मों के फल भोग, हमें क्या है ?''

ऐसा कहकर रविदास महाराज ने डाकू को डाँट दिया। बाहर से तो लगा कि 'महाराज गुस्सा कर रहे हैं, द्वेषपूर्ण वचन कह रहे हैं।' लेकिन ऐसा नहीं है। महापुरुषों के अंतःकरण में करुणा होती है।

एक क्षण के लिए तो डाकू को लगा कि 'इतने सारे लोगों के सामने मेरा अपमान कर दिया!' किंतु दूसरे ही क्षण संत की कृपा याद आयी। उसने म्यान में से तलवार निकालकर दूर फेंक दी और जैसे सूखा बाँस गिरता है वैसे ही संत रविदास साहब के चरणों में गिर पड़ा व प्रार्थना करने लगा :

''आज से आप मुझे स्वीकार कर लीजिये। मैं जैसा-तैसा हूँ, आपका हूँ और आप मेरे हैं।''

संत हृदय नवनीत समाना। संत रविदासजी ने कहा : ''बेटा ! तू स्वीकार हो गया। तू मेरा हो गया।''

संत-सान्निध्य पाकर वह डाकू इतना नम्र, उदार और द्वेषरहित हो गया कि कोई कह देता : 'यह तो पुराना डाकू है।' तो भी उसके चित्त में क्षोभ नहीं होता था। वह समझता : 'चलो, मेरे कर्म कट रहे हैं।' और कहता :

''भाईसाहब ! आप ठीक कह रहे हैं। किंतु वह मर गया है, मैं तो गुरुजी का हूँ।''

एक डाकू संत का कृपापात्र बनकर सत्संग का विषय बन गया ! संत का संग डाकू को भी संत के साथ यशस्वी बना देता है।

जब एक डाकू भी संत का कृपापात्र बन सकता है तो क्या आप नहीं बन सकते ? अवश्य बन सकते हैं। जरूरत है केवल सच्चे हृदय से आत्म-समर्पण की...

*

संत-वचन का पालन

एक बार उड़िया बाबा के पास एक डाकू आया। पेड़ के सहारे उसने बंदूक रखी और बाबा को प्रणाम किया। बाबा ने पूछा : ''कौन ?''

''महाराज ! मेरा व्यवसाय डाका डालने का है। मेरे पास कुछ आदमी हैं। मैं डाकुओं का सरदार हूँ।''

''एक बात मानेगा ?''

''महाराज ! डाका डालना तो नहीं छोड़ पाऊँगा। और कोई आज्ञा हो तो...''

''हाँ, डाका डालना मत छोड़ना। केवल एक बात मान ले। किसी स्त्री को मत छूना। किसी स्त्री को तंग मत करना।''

''हाँ, बाबा ! ठीक है।''

एक बार उसने कहीं डाका डाला। उसके आदमी सारे सामान के साथ एक सुंदरी को भी खटियासहित ले चले। डाकुओं के सरदार ने पीछे मुड़कर देखा और पूछा कि ''यह क्या ?''

उसके साथी ने कहा : ''युवती है।''

''मैंने बाबा को वचन दिया है। अतः तुम लोग स्त्री को छूना नहीं। इसको वापस छोड़कर आओ।''

''हमारे आते-आते गाँव में हल्ला मच गया था और गाँव के लोग जाग गये थे। अब यदि हम इसे वापस छोड़ने जायेंगे तो वे लोग हमें मार डालेंगे।''

''बात तो सच है, किंतु मैंने बाबाजी को वचन दिया है। चलो, मैं चलता हूँ साथ में।''

अब उसे डाकू कहें कि साधक कहें ? वह अपने आदमियों को साथ लेकर गाँव में गया और युवती को छोड़ आया।

संत की आज्ञा मानने का फल क्या हुआ ? उसके हृदय में विवेक जग उठा। वह ग्लानि से भर गया कि 'अरे, सोयी हुई युवती को उठाकर चल पड़ना... हम कैसे-कैसे पाप कर रहे हैं ! इनका कोई अंत नहीं।'

आखिर उसने अपनी पूरी टुकड़ी को बिखेर दिया, डाका डालना छोड़ दिया और बाबा की शरण ली।

उड़िया बाबा के एक वचन के पालन से उस डाकू का पूरा जीवन ही बदल गया !

संसार-सागर से तरने का उपाय

इस संसार से छूटने के लिए अपनी बुद्धि को शास्त्रों के अभ्यास द्वारा शुद्ध बनाओ। शास्त्र-अभ्यास और गुरु के प्रति श्रद्धा के द्वारा अपने आत्मा को प्राप्त कर लो। यदि तुम सतत संकल्प और आशा-तृष्णा का त्याग करते रहोगे तो तुम्हारा चित्त शांत, निर्दोष होता जायेगा। यह चित्त का शांत होना ही समाधि है और वही मुक्ति है। इसलिए चित्त को छोड़कर तुम अंधे, गूँगे और बहरे की तरह रहो।

जो दिखता है वह पूरा जगत चैतन्य का विलासमात्र है, उससे अलग कुछ नहीं - ऐसा समझकर महासागर की तरह स्थिर हो जाओ।

चुपचाप बैठे रहना समाधि नहीं है, तत्त्व का ज्ञान होना ही सच्ची समाधि है क्योंकि आत्मा में करना-न करना है ही नहीं। गुरु एवं शास्त्रों के द्वारा बताये गये मार्ग और अपने अनुभव द्वारा ऐसा निश्चयपूर्वक जानो कि 'मैं ब्रह्म ही हूँ।' इस ज्ञान द्वारा शांति प्राप्त करो। सर्व विषयों के प्रति वैराग्य लाने से ज्ञान मिलता है। ब्रह्मज्ञान होने पर बाह्य जगत दिखते हुए भी 'वास्तव में सत्य नहीं है, स्वप्नवत् है।' ऐसा निश्चय हो जाता है। दुनिया का अच्छा-बुरा देखने, सुनने और भोगने के बाद भी जिसे हर्ष-शोक नहीं होता, वही शांतात्मा है। जो नहीं मिला है उसकी जो इच्छा नहीं करता और जो मिला है उसे सहज रूप से भोगता है वही सच्चा संतोषी है।

जिस समय जो मिलता है उसमें जो संतोष मानता है, उसे आनंद देनेवाली जीवन्मुक्त अवस्था अपने-आप मिल जाती है। उसके लिए करने-न करने जैसा कुछ नहीं रहता। जैसे गहरी नींद में स्वप्न का नाश होता है, वैसे ही कल्पना का अंत आते ही यह पूरा जड़ और चेतन जगत नष्ट हो जाता है।

जब द्रष्टा दृश्य-वस्तु में बँध जाता है तब बंधन होता है और वही द्रष्टा दृश्य-वस्तु की सत्यता के अभाव द्वारा मुक्त हो जाता है। मन ही इस जगतरूपी जादू के खेल बनाता है। इससे जब तक मन है तब तक मोक्ष मिलना संभव नहीं है और मन तो मात्र संकल्परूप है। जहाँ-जहाँ संकल्प है, वहाँ-वहाँ मन है। इससे संकल्प शांत होने पर मन भी नष्ट हो जाता है और मात्र आत्मस्वरूप चित्तवृत्ति ही बाकी रह जाती है। जब चित्तवृत्ति एक वस्तु पर से दूसरी वस्तु पर जाती है, तब बीच में उन दोनों के बिना की जो अवस्था है वह चिदाकाश आत्मा-परमात्मा तुमसे रत्तीभर भी न दूर था, न है। यदि तुम सब संकल्प छोड़कर चिदाकाश में स्थित हो जाओ तो जरूर परम शांति, परम आनंद, परम सामर्थ्य और परमात्मा की प्राप्ति हो जायेगी।

चित्त ही संसाररूप है और उसीके शांत होने पर संसार का अंत आता है। मन के द्वारा भावना करने से ही तुम शरीररूप बने हो। मन में से शरीर की वासना दूर होने पर शरीर के धर्म तुम्हें न लगेंगे। संकल्प न करने के शस्त्र द्वारा जब चित्त का नाश होता है, तब सभी जगह स्थित शांत ब्रह्म की प्राप्ति होती है। चंचलतारहित मन तो कहीं देखने में नहीं आता क्योंकि जैसे उष्णता यह अग्नि का गुण है, वैसे ही चंचलता मन का गुण है। परंतु जो चंचलता से रहित है वह तो अमृतत्व अर्थात् मोक्ष है। इससे तुम संकल्प-विकल्प का त्याग करके शांत बन जाओ। मन का निग्रह करने में मन ही समर्थ है। इसलिए मन के द्वारा मन का नाश करो। भोग भोगने की इच्छा, संकल्पों तथा मैं-मेरापन वगैरह को छोड़कर तुम परम सुखी हो जाओ, परमात्मा में विश्रांति पाओ।

ब्रह्म-परमात्मा तो एक, अद्वैत और अखंड है ऐसा निश्चयपूर्वक मानो और चित्त को स्थिर बनाओ। 'मैं भी नहीं और दूसरा भी कुछ नहीं है अथवा तात्त्विक रूप से मैं ही ब्रह्म हूँ।' - ऐसा जो जानता है वही सच्चा ज्ञानी है। इस संसाररूपी सागर से तैरने के लिए मन के ऊपर विजय पाने के सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है।

सत्संग परम औषध है

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

परमात्मा को अपना परम हितैषी मानें, परम मित्र जानें। इस जगत में परमात्मा जितना हितचिंतक दूसरा कोई नहीं है।

जागतिक आसक्ति और कामनाएँ हमें अशांति की ओर ले जाती हैं, बहिर्मुख करके परतंत्रता का बोध कराती हैं। किंतु परमात्मा के प्रति जो प्रेम होता है वह हमें अशांति, चिंता और भय से मुक्त करके शांति के पावन मार्ग की ओर ले जाता है। वह हमें अंतर्मुख करके संतोष, आनंद और स्वातंत्र्य का अनुभव कराता है।

परमात्म-प्रेम चैतन्योन्मुख बनाता है और विकार जड़ोन्मुख बनाते हैं। विकारी सुख का उपभोग करने के लिए जड़ शरीर की और जड़ इन्द्रियों की मदद लेनी पड़ती है जो हमें देहाध्यास में जकड़ देती है, जबकि ईश्वरीय प्रेम जड़ आसक्तियों को छोड़ने का साहस प्रदान करता है। अपने चैतन्यस्वरूप के आनंद-प्रसाद में विश्रांति दिलाकर अंतर्यामी ईश्वर के साथ हमारा मिलन करा देता है।

एक सत्संगी महिला कार में मथुरा से वृंदावन की ओर जा रही थी। कार में उसके दो छोटे पुत्रों के अलावा पड़ोसी का वह छोटा शिशु भी था, जिसकी माँ का निधन हो चुका था। कार पूरी गति से वृंदावन की ओर जा रही थी। इतने में सामने से तेज रफ्तार से आता हुआ टैंकर कार से बुरी तरह टकराया और भयंकर दुर्घटना घट गयी।

कार-चालक और महिला के दोनों पुत्रों की मृत्यु हो गयी। महिला को भी काफी चोट पहुँची। तीन जगह फ्रेक्चर हो गया। किंतु माँ बिना के उस छोटे शिशु को कुछ न हुआ जिसे महिला ने गोद ले लिया था।

जिन संत के सत्संग में वह महिला जाती थी, उनको जब इस बात का पता चला तो उन्होंने एक मुख्य साधु तथा आश्रमवासी साधक को उस महिला का समाचार जानने के लिए भेजा। उस महिला के पास जाकर साधु ने कहा :

''बहन ! आप तो सत्संगी हैं, फिर आपको इतना दुःख क्यों उठाना पड़ा ? कितनी भीषण दुर्घटना घटी ! आपके दोनों पुत्रों का वहीं निधन हो गया। आपको भी काफी चोट पहुँची है। आपके घर का पवित्र भोजन करनेवाला ड्राइवर भी बेमौत मारा गया। किंतु आश्चर्य है कि गोद लिये मासूम शिशु को कुछ न हुआ ! उसने तो कोई सत्संग नहीं सुना था। ऐसा क्यों हुआ ?''

उस साधु को जो जवाब मिला वह सबके लिए जानने योग्य है। उस सत्संगी महिला ने मंद मुस्कान के साथ कहा :

''स्वामीजी ! ऐसा नहीं है कि सत्संग सुनने से जीवन में किसी प्रकार का सुख-दुःख का कोई प्रसंग ही न आये। फिर भी सत्संग में ऐसी एक अनुपम शक्ति है कि प्रारब्धवेग से जो भी सुख-दुःख के प्रसंग आते हैं उनमें सत्यबुद्धि नहीं रहती। इतनी भीषण दुर्घटना और इतनी भयंकर पीड़ा होते हुए भी मुझे तो ऐसा ही अनुभव होता है कि चोट इस नश्वर शरीर को पहुँची है, कष्ट शरीर भुगत रहा है और नष्ट तो पुत्रों का पंचभौतिक शरीर हुआ है। मेरे शरीर में भी तीन जगह फ्रेक्चर हुआ है किंतु मेरे चैतन्यस्वरूप में कोई फर्क नहीं पड़ा। महाराज ! इस आत्मबल से मैं ऐसे क्षणों में भी शांत और आनंदित हूँ।

सत्संग ऐसा परम औषध है जो बड़े-से-बड़े दुःखद प्रारब्ध को भी हँसते-हँसते सहन करने की शक्ति देता है और अच्छे-से-अच्छे अनुकूल प्रारब्ध को भी अनासक्त भाव से भोगने का सामर्थ्य देता है।

स्वामीजी ! आकाश में उड़ना या पानी पर

चलना कोई बड़ी सिद्धि नहीं है। यह तो क्रियायोग के थोड़े-से अभ्यास से सहज में ही मिलनेवाली सिद्धियों का अंशमात्र है। बड़े-से-बड़े दुःख में भी सम और स्वस्थ रहने के सामर्थ्य को ही संतजन सच्ची सिद्धि मानते हैं।

मिथ्या देह से अहंता-ममता मिटाकर आत्मा-परमात्मा में प्रतिष्ठित होना ही वास्तव में परम सिद्धि है।

सुवर्ण बनाना, पानी पर चलना, अदृश्य हो जाना, लघु या बड़ा अथवा भारी हो जाना - ये अष्टसिद्धियाँ और नवनिधियाँ बड़े ऊँचे योगियों को मिलती है। श्री हनुमानजी ऐसे ऊँचे योगी थे, फिर भी आत्म-साक्षात्कार रूपी समत्व योग के धनी श्री रामचन्द्रजी के परम सेवक हुए। श्रीरामजी के उपदेश से उन्हें आत्म-साक्षात्कार हुआ, समत्व योग की परम सिद्धि उन्होंने पायी।

आप तो जानते ही हैं भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है :

सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥

'जो योगी सुख अथवा दुःख को भी सबमें सम देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।'

(गीता : ६.३२)

सुख-दुःख में सम रहनेवाले योगी की सराहना भगवान श्रीकृष्ण ने भी की है। अष्टसिद्धियों और नवनिधियों के अलावा अन्य छोटी-मोटी कई सिद्धियाँ हैं जो समत्व की सिद्धि से नन्ही हैं और वह समत्व योग सत्संग से सहज ही प्राप्त हो जाता है।

गुरुकृपा हि केवलं शिष्यस्य परं मंगलम्।

अष्टसिद्धियाँ भी परम मंगल नहीं कर सकतीं। स्वामीजी! आप जैसे संतों के कृपाप्रसाद से ही मैं समझ पायी हूँ कि ऐसी देह तो मुझे अनगिनत बार मिली है। उनकी गणना करना भी संभव नहीं है। कभी मैं मुर्गी भी बनी होऊँगी और मेरे बच्चों का आमलेट बना होगा। कभी मैं बकरी भी बनी होऊँगी और मेरे बच्चे कत्लखाने में कत्ल किये गये होंगे। उस समय डंडे की थोड़ी-सी चोट भी बड़ी लगती थी, छोटी-सी विपत्ति भी बड़ी लगती थी। किंतु अब... बड़ी-से-बड़ी विपत्तियाँ भी खेल लगती हैं। यह सत्संग का ही प्रभाव है!''

महिला के जवाब को सुनकर साधु और साधक प्रसन्नचित्त से विदा हुए। उन्हें विश्वास हो गया कि महिला ने वास्तव में संतों के ज्ञान-प्रसाद को बड़े आदर के साथ आत्मसात् किया है।

उन्हींका जीवन धन्य है जो संतों का सत्संग सुनते हैं, उसे समझ पाते हैं और जीवन में उतार पाते हैं। जिनके जीवन में सत्संग नहीं है वे छोटी-छोटी बात में परेशान हो जाते हैं, घबरा जाते हैं, किंतु जिनके जीवन में सत्संग है वे बड़ी-से-बड़ी विपदा में रास्ता निकाल लेते हैं और बलवान होते हैं। संपदा में फँसते नहीं, विपदा में दबते नहीं। ऐसे परिस्थिति-विजयी आत्मारामी हो जाते हैं।

गीता-प्रश्नोत्तरी

१०१. गीता के अनुसार 'ॐ' क्या है ?
१०२. अंत काल में 'ॐ' का उच्चारण करने से क्या होता है ?
१०३. परमात्म-प्राप्ति का फल क्या है ?
१०४. किनका योगक्षेम भगवान स्वयं वहन करते हैं ?
१०५. कर्मयोग व कर्म-संन्यास में से कौन-सा श्रेष्ठ है ?
१०६. कौन पुरुष संसार-बंधन से मुक्त हो सकता है ?
१०७. पंडित कैसे होते हैं ?
१०८. ब्रह्मज्ञानी की पहचान क्या है ?
१०९. सत्त्वगुण प्रधान मनुष्यों की क्या गति होती है ?
११०. रजोगुण प्रधान मनुष्यों की क्या गति होती है ?

पिछले अंक के प्रश्नों के उत्तर

९१. असंग ब्रह्मनिष्ठ ९२. अंतःकरण की शुद्धि के लिए ९३. अज्ञान से ९४. समत्वभाव को ९५. भोग ९६. अभ्यास और वैराग्य से ९७. धागे में मनके की तरह ९८. जो भगवान को जानता है (जो भगवान का भक्त है) ९९. यह सब वासुदेव है, इस भाववाला १००. शरीर को।

तीन शत्रु

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

छोटी-छोटी बातों में चिढ़ जाना, उद्विग्न, भयभीत, शंकाशील या बेचैन हो जाना - यह तो आज के युग की देन है। इसके तीन कारण हैं : काम, क्रोध और लोभ।

जो व्यक्ति अपनी वीर्यरूपी ऊर्जा को सँभालने की अक्ल नहीं रखता, वह मुर्गीछाप बच्चों को जन्म देगा अथवा परिवार-नियोजन के साधनों का उपयोग करके अपना और अपनी पत्नी का सत्यानाश करता ही रहेगा। फिर उसमें सहनशक्ति, आरोग्यता, निर्भयता, ध्यान करने की लगन और मुक्ति के मार्ग पर चलकर परमात्मा को पाने की इच्छा नहीं रहेगी क्योंकि वह अंदर से थक चुका होगा।

आज का युवान समझता ही नहीं कि वीर्यनाश करके वह अपनी अमूल्य शक्ति का अपने ही हाथों से नाश कर रहा है। जो व्यक्ति नीति और मर्यादा के बिना अपनी इच्छाओं को पोसने लगता है उसका मन निर्बल हो जाता है, बुद्धि विनाश की तरफ जाने लगती है और शरीर बीमारियों का शिकार हो जाता है। यदि तुम कामनाओं को व्यर्थ ही पोसते रहोगे तो तुम्हारे न चाहने पर भी ये तीन शत्रु - काम, क्रोध और लोभ तुम्हें गिरा देंगे।

लोभ मनुष्य को मूर्ख बनाता है। जो करना चाहिए वह नहीं करने देता और जो छोड़कर मर जाना है उसके पीछे पागल बना देता है। फिर भले ही रिश्वत लेनी पड़े, छल-कपट करना पड़े, नींद हराम हो जाय और अन्याय के धन से खरीदे हुए अन्न से भले ही बच्चों की बुद्धि क्यों न भ्रष्ट हो जाय, किंतु 'चाहिए... चाहिए...' में जिंदगी पूरी हो जाती है।

ऐसा भी सुनने में आया है कि कोई महिला अति क्रोधी हो और कभी विशेष क्रोध में आकर बालक को स्तनपान कराये तो उससे बालक की मृत्यु हो सकती है। क्रोध एक जहर है। आधे घंटे तक क्रोध करें तो आपके खून में जहर आ जाता है और आपकी रोगप्रतिकारक शक्ति क्षीण हो जाती है। जो व्यक्ति शराबी, मांसाहारी और अति कामी है उसे छोटी-छोटी बात में क्रोध आ जाता है। क्रोधी मनुष्य के चेहरे पर खिन्नता की एक विशेष प्रकार की रेखा देखने को मिलती है।

एक-दो महीने तक प्रतिदिन सुबह आप शांत रहने का संकल्प करें और थोड़ा संयमी जीवन जियें। इससे आपके चेहरे की आकर्षणी शक्ति बढ़ जायेगी। जिस पर आप एक मीठी नजर डाल देंगे, उसका हृदय आपके स्नेह के लिए लालायित हो उठेगा।

आपमें बहुत शक्तियाँ छुपी हैं किंतु उन सभी शक्तियों का नाश आप इन तीन हथियारों - काम, क्रोध और लोभ से कर रहे हैं। कृपा करके इन हथियारों को दूर फेंक दीजिये। यदि इनका सदुपयोग करोगे तो ये ही तुम्हें परमात्मा की प्राप्ति करा देंगे। यदि इनके अंकुश में रहोगे तो ये ही तुम्हें बरबाद कर देंगे।

कामना या फिक्र करनी ही हो तो इस बात की करो कि 'मेरे हृदय में जो हृदयेश्वर है वह कब मिलेगा ? मुक्ति पाने का जो अवसर मिला है, जिस हृदयेश्वर को पाने के लिए यह जन्म मिला है, यदि उसे ही न पाया तो दूसरा सब किस काम का ? ऐसे दिन कब आयेंगे जब संसार की कोई भी चीज मुझे आकर्षित न कर सकेगी,

मैं संसार के सुख-दुःख में सम रहूँगा और परमात्मा का अनुभव करूँगा ? तथा नानकजी, कबीरजी, गार्गी, और महावीर की तरह अपने आत्मा-परमात्मा में स्थिति कैसे करूँ ? शबरी की तरह अपने चित्त को परमात्म-प्रसाद से कैसे भरूँ ? राज्य करने के बावजूद इन शत्रुओं को पराजित करके शम, संतोष और सत्संग का अवलम्बन लेनेवाले राजा जनक की तरह जीवन्मुक्त दशा को कैसे पाऊँ ?'

ऐसी कामना करने से हलकी कामनाएँ दूर होती हैं। काँटे से काँटा निकलता है। ऊँची, महान कामना करोगे तो हलकी कामना निकल जायेगी। जो व्यक्ति कर्तव्य कर्म में व्यस्त नहीं रहता वह जरूर खतरनाक कार्य करता होगा । जप-तप, स्वाध्याय, स्मरण, सेवा, परहित, गृहकार्य आदि में लगे रहना चाहिए।

खाली मन – शैतान का घर...

जो लोग खूब चटपटा भोजन करते हैं, ज्यादा नमक-मिर्च डालकर भोजन तैयार करते हैं वे जल्दी काम-क्रोध से उत्तेजित हो जाते हैं। अति नमक-मिर्च न डालें। आप जो भी खाते हैं उसका प्रभाव आपकी नस-नाड़ियों पर पड़ता है। खारे-खट्टे और चटपटे भोजन के स्वाद से संतोष मानकर परमात्म-रस की मिठास से अनजान न रहना।

दुनियादारों को पता नहीं है कि आत्मा का सुख कैसा है ? दुनिया का सब सुख तराजू के एक पलड़े में रखो और दूसरे पलड़े में सत्यस्वरूप परमात्मा के सत्संग के थोड़े क्षण रखो तो सत्संगवाला पलड़ा भारी हो जायेगा।

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग ॥

ब्रह्मज्ञान की अनुभूति का, ब्रह्मरस का एक घूँट भी कोई पी लेता है तो इन्द्र भी उसके आगे रंक जैसा लगता है, फिर दूसरों की तो बात ही क्या ?

ब्रह्मसुख को खोजने की मति मिली है, उसे सुनने के लिए कान मिले हैं और उसे भोगने के लिए जीवन मिला है। अतः उसे छोड़कर दुनियादारी के तुच्छ सुख में गरक न हो जाना।

मानव तुझे नहीं याद क्या ? तू ब्रह्म का ही अंश है।
कुल-गोत्र तेरा ब्रह्म है, सद्ब्रह्म का तू वंश है॥

*

संयम की शक्ति

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

संयम और सदाचार का आदर करनेवाला विद्यार्थी, सेवा और परोपकार के सद्गुणवाला विद्यार्थी इहलोक और परलोक, दोनों की बाजियाँ जीत लेता है। जिसके जीवन में ध्यान है, प्रभु का नाम है, उसको इहलोक और परलोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

'श्रीरामचरितमानस' में आता है :

परहित बस जिन्ह के मन माहीं।
तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

(अर. का. : ३०.५)

जिस विद्यार्थी के जीवन में संयम है, वह बड़े-बड़े कार्य हँसते-खेलते कर सकता है। हे विद्यार्थी ! ईश्वर की असीम शक्तियाँ तेरे साथ जुड़ी हैं। तू अपने को अकेला मत समझ, ईश्वर और गुरु, दोनों का ज्ञान तेरे साथ है। परमात्म-चेतना और गुरुतत्त्व इन दोनों का सहयोग लेकर विकारों तथा नकारात्मक चिंतन को कुचलते हुए, तू सेवा एवं स्नेह से, पवित्र प्रेम व पवित्रता से आगे बढ़ता चला जा।

महान बननेवाले पवित्र विद्यार्थी कभी शिकवा नहीं करते। जो महान बनना चाहते हैं, वे दुश्चरित्रवान व्यक्तियों का अनुकरण नहीं करते। इतिहास क्या है ? जिनके जीवन में दृढ़ मनोबल और चरित्रबल है, उन मुट्ठीभर महाभाग्यशालियों का ही तो इतिहास लिखा जाता है। हे विद्यार्थी ! तू दृढ़ संकल्प कर कि 'समय व्यर्थ नहीं गँवाऊँगा।' अगर युवती है तो युवान की तरफ और अगर युवान है तो किसी युवती की तरफ बिनजरूरी निगाह नहीं उठायेंगे। अगर निगाह उठानी ही पड़ी तो संयम, पवित्रता व भगवान को आगे रखकर फिर बात करूँगा।

हे विद्यार्थी ! तू अपने जीवन के ओज को अभी से सुरक्षित कर दे, वत्स !

वैद्य शिरोमणि धन्वंतरी महाराज से उनके शिष्यों ने पूछा : ''हे गुरु महाराज ! आपकी शिक्षा, आपके उपदेशों एवं आपके दिव्य गुणों को हम अपने जीवन में आसानी से उतार सकें, इसका कोई सचोट एवं सरल उपाय बताने की कृपा करें।''

धन्वंतरि महाराज ने कहा : ''हे मेरे प्यारे शिष्यो ! सारी विद्याओं, सारी योग्यताओं, सारे सद्गुणों को प्रकटाने, सींचने और बढ़ानेवाला गुण है ब्रह्मचर्य। तुम ब्रह्मचर्य व्रत को जितना समझोगे, सदाचारी और सेवाभावी जीवन बिताने का जितना दृढ़ संकल्प करोगे, तुम्हारी आत्मशक्ति उतनी विकसित होगी। वे लोग धनभागी हैं जिनको मानव-जाति की सेवा करने की इच्छा होती है, जो भगवान के दैवी कार्य में भागीदार होकर अपने दैवी गुण बढ़ाते हैं।

हे मेरे प्यारे शिष्यो ! आलस्य को, बुराइयों को अपना शत्रु समझो। पुरुषार्थ और परमात्म-प्रेम को अपना परम साथी समझो। सेवाभावी विद्यार्थी हर क्षेत्र में सफल और हर किसीका प्यारा हो सकता है। संयम और दृढ़ संकल्पशक्ति विद्यार्थी-जीवन की नींव है।''

१३ वर्ष के बालक रणजीत सिंह में पिता ने संकल्प भर दिया कि 'मेरा बेटा तो कोहिनूर ही पहनेगा।' दृढ़ संकल्प के बल से ही बालक रणजीत सिंह ने बड़े होकर शत्रुओं को परास्त किया और अफगानिस्तान से कोहिनूर लाकर पहनकर दिखा दिया।

ऐसे ही जब दृढ़निश्चयी ध्रुव को देवर्षि नारदजी से मंत्र मिला, तब वह मंत्रजप में दृढ़ता से लगा रहा और सारे विश्व के स्वामी भगवान नारायण को प्रकट करके दिखा दिया।

हे विद्यार्थी ! जैसे बीज में वटवृक्ष छुपा है और चकमक में आग छुपी है, वैसे ही तुझमें परमेश्वर की अथाह शक्तियाँ छुपी हैं।

ज्यों बीज में वृक्ष छुपा है, अरु चकमक में आग।
तेरा साँइयाँ तुझमें है, जाग सके तो जाग॥

हरि ॐ... ॐ... ॐ... ॐ...

जो विद्यार्थी प्रतिदिन भगवान का थोड़ा-बहुत ध्यान करता है, उसकी बुद्धि जरूर तेजस्वी होती है। जो प्रतिदिन एक-दो घंटे मौन रहने का अभ्यास करता है, उसका मनोबल अवश्य बढ़ता है। माता-पिता और गुरुजनों की प्रसन्नता प्राप्त हो, ऐसे कार्य जो विद्यार्थी करता है, वह आगे चलकर एक श्रेष्ठ नागरिक, श्रेष्ठ मनुष्य एवं श्रेष्ठ साधक होकर अपने साध्य को पा लेता है।

धन्वंतरि महाराज ने कहा : ''हे मेरे शिष्यो ! आयुर्वेद में सफलता पाने के लिए और अपने सद्गुणों को विकसित करने के लिए यौवन की सुरक्षा करो। ब्रह्मचर्य व्रत वह रत्न है, वह अमृत की खान है जो जीवात्मा को परमात्मा से भी मिलाने का सामर्थ्य रखता है। यौवन-सुरक्षा के नियम समझोगे तो तुम आयुर्वेद में तो सफल होगे ही, साथ में आत्मा-परमात्मा को पाने में भी सफल हो जाओगे। हे मेरे शिष्यो ! हलकी मति के विद्यार्थियों का अनुकरण मत करना। तुम तो संयमी-सदाचारी एवं वीर पुरुषों, योगी पुरुषों, पवित्र भक्त आत्माओं का अनुसरण करना।''

मीरा को कितनी विघ्न-बाधाएँ आयीं, गार्गी को कितनी कठिनाइयाँ आयीं, फिर भी उन्होंने अपने लक्ष्य को पा लिया। धनभागी है वह १८ वर्षीया सुलभा, जिसका राजा जनक ने आदर किया, अर्घ्य-पाद्य से पूजन किया। हजार-हजार विघ्न-बाधाएँ आ जायें फिर भी जो संयम, सदाचार, ध्यान, भगवान की भक्ति व सेवा का रास्ता नहीं छोड़ता, वह संसार में जरूर बाजी मार लेता है।

हरि ॐ... हरि ॐ... बल... हिम्मत... पवित्र आत्मशक्ति का विकास... ॐ... ॐ...

निःस्वार्थ प्रभुसेवा से, समाजसेवा से, ईश्वर के दैवी कार्यों में सहभागी होने से तुम्हारा देवत्व जगेगा। जिनके जीवन में महापुरुषों की सेवा और सत्संग नहीं है, वे लोग ध्यान करते हैं तो निराशा की खाई में गिरते हैं और अगर संसार के भोगों में पड़ते हैं तो संसार की दलदल में ही डूब मरते हैं। धनभागी तो वे हैं जो निःस्वार्थ सेवा करते हुए, ईश्वर और संतों के दैवी कार्य करते हुए अपने आत्मदेव का आनंद पाते हैं।

स्वंयप्रभा ऐसी ही एक लड़की थी, सुलभा ऐसी ही एक भाग्यवान कुमारी थी, गार्गी ऐसी ही एक महामति थी, मीराबाई ऐसी ही एक भक्त हृदया थी और शबरी भीलन ऐसे ही कर्म तथा भक्ति के योग से योगिनी बनी थी। प्रह्लाद ऐसा ही परमात्मा का एक प्यारा था। ध्रुव ऐसा ही एक दृढ़निश्चयी बालक था, जिसने छः महीने के अंदर परमात्मा को प्रकट करके दिखा दिया।

क्या तुम भी इनकी तरह महान नहीं बनोगे ? भगवान एवं भगवत्प्राप्त महापुरुषों के आशीर्वाद आपके साथ हैं।

हरि ॐऽऽ... हरि ॐऽऽऽ...

*

** 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका के सभी सेवादारों तथा सदस्यों को सूचित किया जाता है कि 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका की सदस्यता के नवीनीकरण के समय पुराना सदस्य क्रमांक/रसीद क्रमांक एवं सदस्यता 'पुरानी' है - ऐसा लिखना अनिवार्य है। जिसकी रसीद में ये नहीं लिखे होंगे, उस सदस्य को नया सदस्य माना जायेगा।*

** नये सदस्यों को सदस्यता के अंतर्गत वर्तमान अंक के अभाव में उसके बदले एक पूर्व प्रकाशित अंक भेजा जायेगा।*

संयम, शील और सदाचार मनुष्य-जीवन की नींव है। संयम मनुष्य के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की प्रथम कसौटी है। यह जीवन की सुख-शांति, महानता और उत्कर्ष का श्रेष्ठतम मार्ग है। यह मनुष्य को नरक से स्वर्ग की ओर जाने की तथा नर में से नारायण बनने की दिशा देता है। यह स्वस्थ और सुखी भविष्य का प्राणबिंदु है। संयम एवं शील स्वस्थ जीवन की आधारशिला और उन्नति के सोपान हैं। उज्ज्वल भविष्य की इच्छा रखनेवालों को बोलचाल, खानपान और रहन-सहन के सभी बिंदुओं पर संयम का सम्मान करना चाहिए। हे युवक ! सावधान, जीवन मूल्यवान है। संयम का कदर कर और अपनी जवानी को आग की लपटों से बचा, तेरा भला होगा।

ब्रह्मचर्य, चेहरे को फूल की तरह खिलाता है, रोगों का शमन करता है, विवेक की ज्योति जगाता है और अनेक बहुमूल्य गुणों के साथ उत्साह में वृद्धि करता है। ब्रह्मचर्य ही स्वास्थ्य की आधारशिला है। बिना ब्रह्मचर्य के संसार उजड़े हुए उपवन की तरह दिख सकता है। ब्रह्मचर्य सद्गुणों का भंडार और मानवता का प्राणबिंदु है। ब्रह्मचर्य का पालन मन, वचन और कर्म - तीनों से होना चाहिए। वीर्य विभूति है, वीर्य ही सम्पूर्ण शक्ति है, वीर्य ही सम्पत्ति है, वीर्य ही जीवन, विचार तथा बुद्धि का सार है। स्वास्थ्य, विवेक, विचार, व्यक्तित्व व जीवनोत्थान की आधारशिला शरीर में संचित शुक्राणुओं पर ही टिकी होती है। वीर्य की बरबादी जीवन की बरबादी का ही दूसरा नाम है।

- श्री भादरिया महाराज

प्रेरणादायी सूत्र

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

✲ व्यर्थ वाद-विवाद न करो। अधिक बोलना उचित नहीं है।

वाद विवाद काहू से न कीजिये।
रसना राम अमृत रस पीजिये ॥

✲ दीपक जलता है तो बत्ती और तेल जलता है। इसी तरह जितना अधिक बोला जाता है, अंदर की शक्ति उतनी ही कम होती है। अतः इस युग के महापुरुष महात्मा गाँधी प्रति सोमवार को व्रत रखते थे और बोलते बिल्कुल न थे। मौन धारण करने की बड़ी महिमा है। मौन धारण करोगे तो बहुत लाभ प्राप्त करोगे।

✲ समाज की शारीरिक, नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए निःस्वार्थ भाव से संतों का प्रसाद बाँटने में जो साझेदार होते हैं, वे धनभागी हैं। वे आप तो तरते हैं, औरों को तारने का पुण्यपुंज भी प्राप्त करते हैं।

✲ जग-चक्रवात में फँसे हुए हे पथभ्रमित मनुष्य ! तूफानों के ऐसे बवण्डर तो जीवन में कदम-कदम पर आते ही रहेंगे। उनसे हतप्रभ हो इधर-उधर क्यों भटकता है ? जब तुझे कोई मार्ग न दिखे तब परमात्मा की शरण हो जा। उसकी दिव्य ज्योति तुझको प्रकाशमय कर देगी।

✲ धन्य हैं वे धर्मपरायण लोग, जो संत और समाज के मध्य सेतु बनकर अपने क्षणभंगुर जीवन को सार्थक बना लेते हैं। ईश्वरीय दैवी कार्य में सहयोगी बनकर अपने को धन्य बना जाते हैं। इस प्रकार सद्धर्म व्यापार में आत्मलीन हो वे स्वयं भी सद्धार्मिक हो जाते हैं और दैवी दिव्य अनुभव के भी साझेदार बन जाते हैं।

✲ सत्संग ऐसा साधन है, जिससे मनुष्य दुःख को मिटा सकता है। हताशा-निराशा को भगा सकता है, पापों का नाश कर सकता है और इसी जीवन में परिस्थितियों से ऊपर उठकर अमर आत्मा का अनुभव कर सकता है।

नर्तकी की देशभक्ति

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

उरु प्रदेश में एक नर्तकी थी, जिसका नाम था मृदुला। वह इतनी खूबसूरत थी और उसकी नृत्यकला इतनी मोहक थी कि बड़े-बड़े मंत्री, सेनाधिकारी वगैरह भी उसके नृत्य के चाहक थे। उसका नृत्य और हास्य तो क्या, उसके नेत्रों के एक कटाक्षमात्र से भी अनेकों घायल हो जाते थे! उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर इतने राजवी पुरुष वहाँ आते थे कि कभी-कभी तो उन्हें मृदुला से मिले बिना ही लौट जाना पड़ता था।

उसके रूप-लावण्य एवं नृत्यकला की प्रशंसा वहाँ के राजा करुष तक पहुँची। एक दिन राजा स्वयं मृदुला के पास आया। मृदुला ने देखा कि राजा खुद आये हैं!

वह सोचने लगी : 'अगर राजा ही नर्तकी के चक्कर में पड़कर विलासी हो जायेंगे तो प्रजा का तो सत्यानाश हो जायेगा, फिर मेरे देश का क्या होगा?'

भले, वह एक नर्तकी थी लेकिन देशभक्ति उसके अंदर कूट-कूटकर भरी हुई थी।

मृदुला : ''राजन्! आप और मेरे जैसी, लोगों को विलासिता की खाई में धकेलनेवाली, लोगों की जिंदगी बरबाद करनेवाली एक तुच्छ नर्तकी के पास?''

राजा : ''हे प्रिये! तेरे सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर मैं खिंचा चला आया हूँ। तेरा रूप-लावण्य अप्सराओं को भी लज्जित करनेवाला है। तू मेरी रानी से भी अधिक सुंदर है। अब दूसरी बातें छोड़ और मेरे साथ अपने भवन में चल।''

मृदुला : ''अगर आप जैसे प्रजापालक भी फिसलने लगे तो देश का क्या होगा, राजन्?''

राजा : ''अब इन फालतू बातों में समय नष्ट न कर। मैं कुछ सुनना नहीं चाहता। मैं जो अभिलाषा लेकर आया हूँ उसे पूरी कर। इसीमें तुम्हारी भलाई है।''

राजा पर तो कामविकार हावी हो चुका था। चतुर मृदुला समझ गयी कि अब इन्हें समझाना मुश्किल है। उसने बात बदल दी।

मृदुला : ''राजन्! आप मेरे रूप-लावण्य व सौन्दर्य पर इतने मोहित हैं तो ठीक है। मैं आपके ही राज्य की एक नर्तकी हूँ, अबला हूँ। आपकी आज्ञा का उल्लंघन मैं कैसे कर सकती हूँ? लेकिन उरु प्रदेश के सर्वेसर्वा! मैं अभी रजोदर्शन में हूँ। स्त्री अगर रजस्वला हो और पुरुष उसे छुए तो पुरुष की बुद्धि, ओज, तेज और तंदुरुस्ती का नाश होता है, यह आप जानते ही हैं। इसलिए मेरे मासिक धर्म के पाँच दिन बीत जायें फिर मैं अपने रूप-लावण्य और सौन्दर्य को सजा-धजाकर चैत्य सरोवर पर आपसे मिलूँगी।''

मृदुला रजस्वला है यह जानकर राजा ने अपने-आपको सँभाला। अब उसके इंतजार में राजा का एक-एक दिन मानों, एक-एक वर्ष के समान बीत रहा था। पहले तो उसने मृदुला के रूप-लावण्य-सौन्दर्य के विषय में सुना था लेकिन अभी तो वह स्वयं देखकर आया था। राजा बस यही सोचता रहता कि 'कब उसके पाँच दिन पूरे होंगे?'

पाँच दिन पूरे हुए मानों, पाँच साल बीत गये। छठे दिन राजा चैत्य सरोवर पर आया। उसे मृदुला तो मिली लेकिन जीवित नहीं, मृतावस्था में। उसकी लाश के साथ एक चिट्ठी मिली, जिसमें लिखा था : **'देश का राजा ही यदि एक नर्तकी के चक्कर में पड़कर विलासिता में डूब जायेगा तो देश पतन के गर्त में चला जायेगा। उसकी अपेक्षा एक नर्तकी की कुर्बानी को मैं अधिक अच्छा समझती हूँ।'**

राजा को बचाने के लिए आत्महत्या जैसा घृणित पाप करने की अपेक्षा वह किसी संत-महात्मा की शरण में जाती तो उसे दूसरे अनेक सुंदर उपाय मिलते।

नर्तकी की देशभक्ति

*** संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ***

उरु प्रदेश में एक नर्तकी थी, जिसका नाम था मृदुला। वह इतनी खूबसूरत थी और उसकी नृत्यकला इतनी मोहक थी कि बड़े-बड़े मंत्री, सेनाधिकारी वगैरह भी उसके नृत्य के चाहक थे। उसका नृत्य और हास्य तो क्या, उसके नेत्रों के एक कटाक्षमात्र से भी अनेकों घायल हो जाते थे ! उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर इतने राजवी पुरुष वहाँ आते थे कि कभी-कभी तो उन्हें मृदुला से मिले बिना ही लौट जाना पड़ता था।

उसके रूप-लावण्य एवं नृत्यकला की प्रशंसा वहाँ के राजा करुष तक पहुँची। एक दिन राजा स्वयं मृदुला के पास आया। मृदुला ने देखा कि राजा खुद आये हैं !

वह सोचने लगी : 'अगर राजा ही नर्तकी के चक्कर में पड़कर विलासी हो जायेंगे तो प्रजा का तो सत्यानाश हो जायेगा, फिर मेरे देश का क्या होगा ?'

भले, वह एक नर्तकी थी लेकिन देशभक्ति उसके अंदर कूट-कूटकर भरी हुई थी।

मृदुला : ''राजन् ! आप और मेरे जैसी, लोगों को विलासिता की खाई में धकेलनेवाली, लोगों की जिंदगी बरबाद करनेवाली एक तुच्छ नर्तकी के पास ?''

राजा : ''हे प्रिये ! तेरे सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर मैं खिंचा चला आया हूँ। तेरा रूप-लावण्य अप्सराओं को भी लज्जित करनेवाला है। तू मेरी रानी से भी अधिक सुंदर है। अब दूसरी बातें छोड़ और मेरे साथ अपने भवन में चल।''

मृदुला : ''अगर आप जैसे प्रजापालक भी फिसलने लगे तो देश का क्या होगा, राजन् ?''

राजा : ''अब इन फालतू बातों में समय नष्ट न कर। मैं कुछ सुनना नहीं चाहता। मैं जो अभिलाषा लेकर आया हूँ उसे पूरी कर। इसीमें तुम्हारी भलाई है।''

राजा पर तो कामविकार हावी हो चुका था। चतुर मृदुला समझ गयी कि अब इन्हें समझाना मुश्किल है। उसने बात बदल दी।

मृदुला : ''राजन् ! आप मेरे रूप-लावण्य व सौन्दर्य पर इतने मोहित हैं तो ठीक है। मैं आपके ही राज्य की एक नर्तकी हूँ, अबला हूँ। आपकी आज्ञा का उल्लंघन मैं कैसे कर सकती हूँ ? लेकिन उरु प्रदेश के सर्वेसर्वा ! मैं अभी रजोदर्शन में हूँ। स्त्री अगर रजस्वला हो और पुरुष उसे छुए तो पुरुष की बुद्धि, ओज, तेज और तंदुरुस्ती का नाश होता है, यह आप जानते ही हैं। इसलिए मेरे मासिक धर्म के पाँच दिन बीत जायें फिर मैं अपने रूप-लावण्य और सौन्दर्य को सजा-धजाकर चैत्य सरोवर पर आपसे मिलूँगी।''

मृदुला रजस्वला है यह जानकर राजा ने अपने-आपको सँभाला। अब उसके इंतजार में राजा का एक-एक दिन मानों, एक-एक वर्ष के समान बीत रहा था। पहले तो उसने मृदुला के रूप-लावण्य-सौन्दर्य के विषय में सुना था लेकिन अभी तो वह स्वयं देखकर आया था। राजा बस यही सोचता रहता कि 'कब उसके पाँच दिन पूरे होंगे ?'

पाँच दिन पूरे हुए मानों, पाँच साल बीत गये। छठे दिन राजा चैत्य सरोवर पर आया। उसे मृदुला तो मिली लेकिन जीवित नहीं, मृतावस्था में। उसकी लाश के साथ एक चिट्ठी मिली, जिसमें लिखा था : **'देश का राजा ही यदि एक नर्तकी के चक्कर में पड़कर विलासिता में डूब जायेगा तो देश पतन के गर्त में चला जायेगा। उसकी अपेक्षा एक नर्तकी की कुर्बानी को मैं अधिक अच्छा समझती हूँ।'**

राजा को बचाने के लिए आत्महत्या जैसा घृणित पाप करने की अपेक्षा वह किसी संत-महात्मा की शरण में जाती तो उसे दूसरे अनेक सुंदर उपाय मिलते।

सनकादि ऋषियों का महाराज पृथु को उपदेश

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

'श्रीमद्भागवत' के चौथे स्कंध के २२वें अध्याय में आता है :

महाराज पृथु के राजभवन में सनकादि ऋषि पधारे। उनको देखकर राजा पृथु ने अर्घ्य-पाद्य से उनका पूजन किया और अपने को धनभागी मानते हुए उनसे कहा :

''आज मैं धनभागी हुआ कि आप जैसे ब्रह्मवेत्ता मुझ जैसे संसार में उलझे हुए जीव को तारने के लिए स्वयं पधारे हैं। जिनके घर में भगवान की चर्चा नहीं होती और भगवद्भक्तों के चरण नहीं पड़े हैं तथा हृदय में भगवच्चिंतन का अभाव है, उनके घर धन-दौलत से संपन्न होते हुए भी ऐसे वृक्षों के समान हैं जिन पर साँप रहते हैं।

महाराज ! जन्मों का भटका और मोह-माया में अटका हुआ मैं आपके श्रीचरणों में प्रार्थना करता हूँ कि संसार की आपाधापी में उलझे हुए मुझ जैसे जीवों के लिए इसी जन्म में सुगमता से अपने ईश्वरीय प्रसाद को पाने का उपाय बतायें। यह भी बतायें कि परब्रह्म-परमात्मा में दृढ़ अनुराग कैसे हो ?''

तब श्री सनत्कुमारजी ने कहा : ''राजन् ! इन बातों को ध्यान से सुनो :

१) गुरु और शास्त्र के वचनों में विश्वास यह भगवत्तत्त्व में स्थिति करने हेतु नींव है।

२) मुक्ति की कामनावाले को भागवत धर्मों का आचरण करना चाहिए और अपने लक्ष्य की स्मृति रखनी चाहिए।

भागवत धर्म का आचरण क्या है ? - न आप दुःखी हों, न दूसरों के दुःख का निमित्त बनें।

३) दुःख आया तो आया, सुख आया तो आया। किंतु उनका भोक्ता नहीं बनना चाहिए। सुख के भोगी भी पछताते हैं और दुःख के भोगी भी। वे दोनों खोखले हो जाते हैं। राजन् ! सुख-दुःख आने-जानेवाली चीज है ऐसा समझकर तत्त्व की जिज्ञासा करें।

४) ज्ञानयोग में स्थिति करें। ज्ञानयोग सबसे ऊँचा योग है और इसमें स्थिति के लिए सद्गुरु का सान्निध्य सहायक है। सद्गुरु के उपदेश का खूब-खूब निष्ठापूर्वक चिंतन-मनन करना चाहिए।

५) भगवद्-उपासना करें।

भगवान या गुरु की तस्वीर की ओर एकटक निहारें, फिर आँखें बंद करके उनको देखने का यत्न करें। इससे आपके मन और प्राण ऊपर के केन्द्रों में आयेंगे, विकारों के आवेग-आवेश रुकेंगे। क्षमाशक्ति, शौर्यशक्ति, अनुमान शक्ति आदि का विकास होगा। व्यवहार भी आसानी से सुलझता जायेगा और परमार्थ में भी गति होगी।

६) भगवान की कथा-वार्ता प्रयत्नपूर्वक सुनें। जगत की कथा-वार्ताओं का श्रवण करने से राग-द्वेष बढ़ता है और भगवत्कथा से राग-द्वेष मिटता है।

७) जो संसार को सत्य मानते हैं और अहंकार को सजाकर भोग-वासना की पूर्ति करके सुखी होने में उलझे हुए हैं, ऐसे लोगों से मित्रता न करें। उनसे जरूरत पड़े तो ही बातचीत करें, उनमें अधिक न उलझें।

८) जो पदार्थ प्रिय हों उनका संग्रह न करें क्योंकि प्रिय-से-प्रिय चीज भी एक दिन तो छोड़नी ही पड़ती है। बाह्य चीजों की आसक्ति मनुष्य को रुलाती रहती है और परमात्मा से मिलने में विघ्न पैदा करती है।

अपनी प्रिय वस्तु दूसरों को बाँट दें। इससे

मनुष्य लोभ में नहीं पड़ेगा और प्रिय वस्तु से जुड़कर मोही नहीं बनेगा। यदि लोभी-मोही होने से बचना है तो प्रिय वस्तु की आसक्ति का अभाव रखें।

९) भगवान के गुणों का श्रवण-मनन-चिंतन करें और इसके अतिरिक्त का समय आत्मा में ही संतुष्ट रहते हुए एकांत में गुजारने की रुचि रखें। जीव अकेला आया है और अकेला ही जायेगा, इसलिए अकेले बैठकर उस एक परमेश्वर का चिंतन करे।

१०) अपने तन-मन-वचन से किसी भी जीव को कष्ट न पहुँचे और दूसरे का पतन न हो इसका ध्यान रखें।

११) निवृत्ति में निष्ठा रखें और आत्म-अनुसंधान करें। ५० वर्ष के बाद मनुष्य को निवृत्त होते जाना चाहिए और अपने आत्मा के उद्धार का तत्परता से यत्न करना चाहिए।

१२) आत्महित का अनुसंधान करें तथा निष्काम भाव से यम-नियमों का पालन करें।

१३) किसीकी निंदा न करें, न सुनें। 'श्रीरामचरितमानस' में भी आता है :

पर निंदा सम अघ न गरीसा ॥

१४) योगक्षेम के लिए प्रयत्न न करें।

साधक ऐसा चिंतन न करे कि 'भविष्य में मेरा क्या होगा ? मैं क्या खाऊँगा, कहाँ रहूँगा ? ईश्वर का चिंतन करे और साथ में अपनी रोजी-रोटी की चिंता करे या रहन-सहन की फिक्र करे ? ना-ना...

भगवान ने गीता में कहा है :

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

'जो अनन्य प्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वर का निरंतर चिंतन करते हुए निष्काम भाव से भजते हैं, उन नित्य-निरंतर मेरा चिंतन करनेवाले पुरुषों का योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त करा देता हूँ।'

(गीता : ९.२२)

१५) शीतोष्णादि द्वन्द्वों को सहन करें। शरीर है तो कभी गर्मी लगेगी, कभी सर्दी, कभी अनुकूलता आयेगी तो कभी प्रतिकूलता, कभी मान मिलेगा तो कभी अपमान। इन द्वन्द्वों में अपना संतुलन नहीं खोना चाहिए।

१६) भगवान के गुणों का बार-बार वर्णन करें एवं भक्तिभाव बढ़ायें।

जो मनुष्य इन बातों का पालन करता है, उसकी आत्मस्वरूप परब्रह्म-परमात्मा में अनायास ही सुदृढ़ प्रीति हो जाती है।''

*

सहज शंख मुद्रा

विधि : दोनों हाथों की उँगलियाँ एक-दूसरे में अटकाकर हथेलियों से एक-दूसरे पर दबाव डालें। दोनों हाथों के अँगूठे एक-दूसरे से स्पर्श किये हुए सीधे रहें।

यह मुद्रा वज्रासन या सुखासन में बैठकर ५ से २० मिनट तक करें। मूलबंध-युक्त प्राणायाम के साथ इसे करने से विशेष लाभ होता है।

लाभ : १. शरीर-शुद्धि करनेवाले संस्थानों एवं अवयवों के कार्य सुचारु रूप से होते हैं।

२. रोगप्रतिकारक शक्ति बढ़ती है।

३. बवासीर जैसे रोग ठीक होते हैं।

४. रक्ताभिसरण व्यवस्थित होता है।

५. हृदय की कार्यक्षमता बनी रहती है।

६. तुतलापन, अटक-अटककर बोलना, वाणी के दोष एवं रोग ठीक होते हैं।

७. इस मुद्रा के नियमित अभ्यास से गायक अपनी आवाज को अधिक मधुर बना सकता है।

दिव्य औषधि : पंचगव्य

गोमूत्र, गोमय रस, गोदुग्ध, गोदधि व गोघृत का निश्चित अनुपात में मिश्रण 'पंचगव्य' कहलाता है। जैसे पृथ्वी, जल, तेज आदि पंचमहाभूत सृष्टि का आधार हैं, वैसे ही स्वस्थ, सुखी व सुसम्पन्न जीवन का आधार गौ-प्रदत्त ये पाँच अनमोल द्रव्य हैं। पंचगव्य मनुष्य के शरीर को शुद्ध कर स्वस्थ, सात्त्विक व बलवान बनाता है। इसके सेवन से तन-मन-बुद्धि के विकार दूर होकर आयुष्य, बल और तेज की वृद्धि होती है।

गव्यं पवित्रं च रसायनं च पथ्यं च हृद्यं बलबुद्धिदंस्यात्।
आयुं प्रदं रक्तविकारहारि त्रिदोष हृद्रोगविषापहं स्यात्॥

अर्थात् पंचगव्य परम पवित्र रसायन है, पथ्यकर है। हृदय को आनंद देनेवाला तथा आयु-बल-बुद्धि प्रदान करनेवाला है। यह त्रिदोषों का शमन करनेवाला, रक्त के समस्त विकारों को दूर करनेवाला, हृदयरोग एवं विष के प्रभाव को दूर करनेवाला है।

इसके द्वारा कायिक, वाचिक, मानसिक आदि पाप-संताप दूर हो जाते हैं।

पंचगव्यं प्राशनं महापातकनाशनम्।

(महाभारत)

सभी प्रकार के प्रायश्चितों में, धार्मिक कृत्यों व यज्ञों में पंचगव्य-प्राशन का विधान है। वेदों, पुराणों एवं धर्मशास्त्रों में पंचगव्य की निर्माण-विधि एवं सेवन-विधि का वर्णन आता है। पंचगव्य शास्त्रोक्त रीति से अत्यंत शुचिता, पवित्रता व मंत्रोच्चारण के साथ बनाया जाता है।

पंचगव्य निर्माण-विधि : धर्मशास्त्रों में प्रसिद्ध ग्रंथ 'धर्मसिंधु' के अनुसार पंचगव्य के पाँचों द्रव्यों का अनुपात इस प्रकार है :-

गोघृत - ८ भाग, गोदुग्ध - १ भाग, गोदधि - १० भाग, गोमूत्र - ८ भाग, गोमय रस - १ भाग और कुशोदक - ४ भाग।

'बोधायन स्मृति' में इन पाँच द्रव्यों का अनुपात इस प्रकार है :-

गोघृत - १ भाग, गोदधि - २ भाग, गोमय रस - आधा भाग, गोमूत्र - १ भाग, दूध - ३ भाग और कुशोदक - १ भाग।

८० वर्ष के एक अनुभवी वैद्य के अनुसार द्रव्यों का अनुपात :-

गोझरण - २० भाग, घी - ढाई भाग, दूध - १० भाग, गोबर - डेढ़ भाग और गोदधि - ५ भाग।

वायु प्रकृतिवालों के लिए दही - २० भाग
कफ प्रकृतिवालों के लिए गोझरण - ४० भाग
पित्त प्रकृतिवालों के लिए घी - ५ भाग

विशेष ध्यान देने योग्य बातें :-

१. उपर्युक्त द्रव्य देशी नस्ल की स्वस्थ गाय के होने चाहिए।

२. गोबर को ज्यों-का-त्यों मिश्रण में नहीं डालना चाहिए बल्कि इसकी जगह गोमय रस का उपयोग करें।

ताजे गोबर में सूती कपड़ा दबाकर रखें। कुछ समय बाद निकालकर निचोड़ने से गोबर का रस अर्थात् गोमय रस प्राप्त होता है।

३. कुश (डाभ) का पंचांग एक दिन तक गंगाजल में डुबाकर रखने से कुशोदक बन जाता है।

गोमूत्र के अधिष्ठातृ देवता वरुण, गोमय के अग्नि, दूध के सोम, दही के वायु, घृत के सूर्य और कुशोदक के देवता विष्णु माने गये हैं। इन सभी द्रव्यों को एकत्रित करने तथा पंचगव्य का पान करने आदि के भिन्न-भिन्न मंत्र शास्त्रों में बताये गये हैं। इन सभी द्रव्यों को एक ही पात्र में डालते समय निम्न श्लोकों का तीन बार उच्चारण करें -

गोमूत्र

गोमूत्रं सर्वशुद्धयर्थं पवित्रं पापशोधनम् ।
आपदो हरते नित्यं पात्रे तन्निक्षिपाम्यहम् ॥

गोमय

अग्रमग्रश्चरन्तीनां औषधीनां रसोद्भवम् ।
तासां वृषभपत्नीनां पात्रे तन्निक्षिपाम्यहम् ॥

गोदुग्ध

पयः पुण्यतमं प्रोक्तं धेनुभ्यश्च समुद्भवम् ।
सर्वशुद्धिकरं दिव्यं पात्रे तन्निक्षिपाम्यहम् ॥

गोदधि

चन्द्रकुन्दसमं शीतं स्वच्छं वारिविवर्जितम् ।
किंचिदाम्लरसालं च क्षिपेत् पात्रे च सुन्दरम् ॥

गोघृत

इदं घृतं महद्दिव्यं पवित्रं पापशोधनम् ।
सर्वपुष्टिकरं चैव पात्रे तन्निक्षिपाम्यहम् ॥

कुशोदक

कुशमूले स्थितो ब्रह्मा कुशमध्ये जनार्दनः ।
कुशाग्रे शंकरो देवस्तेन युक्तं करोम्यहम् ॥

सर्वप्रथम उपरोक्त द्रव्यों से सम्बन्धित मंत्रों का उच्चारण करते हुए सभीको एकत्रित करें । बाद में प्रणव (ॐ) के उच्चारण के साथ कुश से हिलाते हुए उनको मिश्रित करें ।

सेवन-विधि : पंचगव्य सुवर्ण अथवा चाँदी के पात्र में या पलाश-पत्र के दोने में लेकर निम्न मंत्र के तीन बार उच्चारण के पश्चात् खाली पेट सेवन करना चाहिए ।

यत् त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति मामके ।
प्राशनात् पंचगव्यस्य दहत्वग्निरिवेन्धनम् ॥

अर्थात् त्वचा, मज्जा, मेधा, रक्त और हड्डियों तक जो पाप मुझमें प्रविष्ट हो गये हैं, वे सब मेरे इस पंचगव्य के प्राशन करने से वैसे ही नष्ट हो जायें, जैसे प्रज्वलित अग्नि में सूखी लकड़ी डालने पर भस्म हो जाती है ।

(महाभारत)

पंचगव्य-सेवन की मात्रा : बच्चों के लिए १० ग्राम और बड़ों के लिए २० ग्राम । पंचगव्य-सेवन के पश्चात् कम-से-कम ३ घंटे तक कुछ भी न खायें ।

पंचगव्य के नियमित सेवन से मानसिक व्याधियाँ पूर्णतः नष्ट हो जाती हैं । विषैली औषधियों के सेवन से तथा लम्बी बीमारी से शरीर में संचित हुए विष का प्रभाव भी निश्चित रूप से नष्ट हो जाता है । गोमाता से प्राप्त होनेवाला, अल्प प्रयास और अल्प खर्च में मानव-जीवन को सुरक्षित बनानेवाला यह अद्भुत रसायन है ।

पंचगव्य घृत

गौ-प्रदत्त उपरोक्त पाँचों द्रव्यों को समान मात्रा में मिलाकर तत्पश्चात् अग्नि पर पकाकर 'पंचगव्य घृत' बनाया जाता है । इसका उपयोग विशेषतः मानसिक विकारों में किया जाता है । इसके नियमित सेवन से मनोदैन्य, मनोविभ्रम, मानसिक अवसाद (डिप्रेशन) आदि लक्षण तथा उन्माद, अपस्मार आदि मानसिक व्याधियाँ धीरे-धीरे दूर होने लगती हैं ।

बनाने की विधि : गोमूत्र, गोबर का रस, दूध, दही तथा घी समान मात्रा में लें । कढ़ाई में पहले घी गर्म करें । गर्म घी में क्रमशः गोबर का रस, दही, गोमूत्र व अंत में दूध डालें । कलछी से मिश्रण को हिलाते हुए धीमी आँच पर घी पकायें । घृत सिद्ध होने पर छानकर काँच अथवा चीनी मिट्टी के बर्तन में भरकर रखें ।

सिद्ध घृत का परीक्षण : घी सिद्ध होने पर घृत में उत्पन्न बुलबुलों का आकार छोटा होने लगता है । ऊपर का झाग शांत होने लगता है । कल्क (गाढ़ा अवशेष) नीचे जमा हो जाता है व ऊपर स्वच्छ घी मात्र शेष रहता है ।

कढ़ाई में नीचे जमा कल्क अग्नि में डालते ही बिना आवाज किये जलने लगे तो घृत सिद्ध हो चुका है, ऐसा समझना चाहिए ।

मात्रा : १० से १५ ग्राम घी सुबह खाली पेट गुनगुने पानी से लें ।

इसके स्निग्ध व शीत गुणों से मस्तिष्क के उपद्रव शांत हो जाते हैं । स्नायु व नाड़ियों में बल

आने लगता है। यह क्षय, श्वास (दमा), खाँसी, धातुक्षीणता, पाण्डु, जीर्णज्वर, कामला आदि व्याधियों में भी उपयुक्त है। पेट, वृषण (अण्डकोश) तथा हाथ-पैरों की सूजन में यह बहुत ही लाभदायी है। रोगी तथा निरोगी, सभी इसका सेवन कर स्वास्थ्य व दीर्घायुष्य की प्राप्ति कर सकते हैं।

विधिवत् पंचगव्य घृत बनाना सबके लिए संभव न हो पाने के कारण 'साँईं श्री लीलाशाहजी उपचार केन्द्र, सूरत' के साधकों ने यह शरीरशोधक, बलवर्धक, पापनाशक सिद्ध गोघृत बनाना शुरू किया है।

घर पर इसे बनाते समय विधिवत् बनाने की सावधानी बरतें। दीर्घ, निरोग और प्रसन्न जीवन के लिए गोघृत वरदानस्वरूप है।

*

शीत ऋतुचर्या

शीत ऋतु के अंतर्गत हेमंत और शिशिर ऋतुएँ आती हैं। इस काल में चन्द्रमा की शक्ति सूर्य की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होती है। इसलिए इस ऋतु में औषधियों, वृक्ष व पृथ्वी की पौष्टिकता में भरपूर वृद्धि होती है व जीव-जंतु भी पुष्ट होते हैं। इस ऋतु में शरीर में कफ का संचय होता है तथा पित्तदोष का नाश होता है।

शीत ऋतु में स्वाभाविक रूप से जठराग्नि तीव्र रहती है, अतः पाचनशक्ति प्रबल रहती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि हमारे शरीर की त्वचा पर ठंडी हवा और ठंडे वातावरण का प्रभाव बारंबार पड़ते रहने से शरीर के अंदर की उष्णता बाहर नहीं निकल पाती बल्कि अंदर-ही-अंदर इकट्ठी होकर जठराग्नि को प्रबल करती है। अतः इस समय लिया गया पौष्टिक और बलवर्धक आहार वर्ष भर शरीर को तेज, बल और पुष्टि प्रदान करता है। इस ऋतु में एक स्वस्थ व्यक्ति को तंदुरुस्त रहने के लिए किस प्रकार का आहार लेना चाहिए? शरीर की रक्षा कैसे करनी चाहिए? आइये, यह सब हम जानें :

* शीत ऋतु में खारा तथा मधुर रसप्रधान आहार लेना चाहिए।

* पचने में भारी, पौष्टिकता से भरपूर, गरम व स्निग्ध प्रकृति के, घी से बने पदार्थों का यथायोग्य सेवन करना चाहिए।

* वर्ष भर शरीर की स्वास्थ्य-रक्षा हेतु शक्ति का भंडार एकत्रित करने के लिए उड़दपाक, सालमपाक, सोंठपाक जैसे वाजीकारक पदार्थों अथवा च्यवनप्राश आदि का उपयोग करना चाहिए।

* मौसमी फल व शाक, दूध, रबड़ी, घी, मक्खन, मट्ठा, शहद, उड़द, खजूर, तिल, नारियल, मेथी, पीपर, सूखा मेवा तथा चर्बी बढ़ानेवाले अन्य पौष्टिक पदार्थ इस ऋतु में सेवन योग्य माने जाते हैं। प्रातः सेवन हेतु रात को भिगोये हुए कच्चे चने (खूब चबा-चबाकर खायें), मूँगफली, गुड़, गाजर, केला, शकरकंद, सिंघाड़ा, आँवला आदि कम खर्च में सेवन किये जानेवाले पौष्टिक पदार्थ हैं।

* इस ऋतु में बर्फ अथवा बर्फ का या फ्रिज का पानी, रूखे-सूखे, कसैले, तीखे तथा कड़वे रसप्रधान द्रव्यों, वातकारक और बासी पदार्थों एवं जो पदार्थ आपकी प्रकृति के अनुकूल न हों, उनका सेवन न करें। शीत प्रकृति के पदार्थों का अति सेवन न करें। हलका भोजन भी निषिद्ध है।

* इन दिनों में खटाई का अधिक प्रयोग न करें, जिससे कफ का प्रकोप न हो और खाँसी, श्वास (दमा), नजला, जुकाम आदि व्याधियाँ न हों। ताजा दही, छाछ, नींबू आदि का सेवन कर सकते हैं। भूख को मारना या समय पर भोजन न करना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है। क्योंकि 'चरक संहिता' में लिखा है कि शीतकाल में जठराग्नि के प्रबल होने पर उसके बल के अनुसार पौष्टिक और भारी आहाररूपी ईंधन नहीं मिलने पर यह बढ़ी हुई अग्नि शरीर में उत्पन्न धातु (रस) को जलाने लगती है और वात कुपित होने लगता है। अतः इस ऋतु में उपवास भी अधिक नहीं करने चाहिए।

✲ शरीर को ठंडी हवा के सम्पर्क में अधिक देर तक न आने दें।

✲ प्रतिदिन प्रातःकाल दौड़ लगाना, शुद्ध वायुसेवन हेतु भ्रमण, शरीर की तेलमालिश, व्यायाम, कसरत व योगासन करने चाहिए।

✲ जिनकी तासीर ठंडी हो, वे इस ऋतु में गुनगुने-गर्म जल से स्नान करें। अधिक गर्म जल का प्रयोग न करें। हाथ-पैर धोने में भी यदि गुनगुने पानी का प्रयोग किया जाय तो हितकर होगा।

✲ शरीर की चंपी करवाना एवं यदि कुश्ती अथवा अन्य कसरतें आती हों तो उन्हें करना हितावह है।

✲ तेलमालिश के बाद शरीर पर उबटन लगाकर स्नान करना हितकारी होता है।

✲ कमरे एवं शरीर को थोड़ा गर्म रखें। सूती, मोटे तथा ऊनी वस्त्र इस मौसम में लाभकारी होते हैं।

✲ प्रातःकाल सूर्य की किरणों का सेवन करें। पैर ठंडे न हों इस हेतु जूते पहनें। बिस्तर, कुर्सी अथवा बैठने के स्थान पर कम्बल, चटाई, प्लास्टिक अथवा टाट की बोरी बिछाकर ही बैठें। सूती कपड़े पर न बैठें।

✲ इन दिनों स्कूटर जैसे दुपहिया खुले वाहनों द्वारा लम्बा सफर न करते हुए बस, रेल, कार जैसे वाहनों से ही सफर करने का प्रयास करें।

✲ दशमूलारिष्ट, लोहासव, अश्वगंधारिष्ट, च्यवनप्राश अथवा अश्वगंधावलेह जैसी देशी व आयुर्वेदिक औषधियों का इस काल में सेवन करने से वर्ष भर के लिए पर्याप्त शक्ति का संचय किया जा सकता है।

✲ हेमंत ऋतु में बड़ी हरड़ का चूर्ण और सोंठ का चूर्ण समान मात्रा में मिलाकर और शिशिर ऋतु में बड़ी हरड़ का चूर्ण उतनी ही मात्रा में पीपर (पिप्पली या पीपल) चूर्ण के साथ प्रातः सूर्योदय के समय अवश्य सेवन करना चाहिए। दोनों मिलाकर ५ ग्राम लेना पर्याप्त है। इस मिश्रण को पानी में घोलकर पी जायें। यह उत्तम रसायन है। लहसुन की प्रकृति तामसी होने पर भी आरोग्य की दृष्टि से इसमें सैकड़ों गुण पाये गये हैं। जिनको भूख नहीं लगती, जिनका हृदय कमजोर हो, जिनकी पाचनशक्ति कमजोर हो, उनके लिए लहसुन वरदानस्वरूप है। लहसुन का उपयोग चटनी अथवा सब्जी में किया जा सकता है।

✲ जो सम्पन्न और समर्थ हों, वे इस मौसम में केसर, चंदन और अगर घिसकर शरीर पर लेप करें।

✲ गरिष्ठ खाद्य पदार्थों के सेवन से पहले अदरक के टुकड़ों पर नमक व नींबू का रस डालकर खाने से जठराग्नि अधिक प्रबल होती है।

✲

गुरुकृपा से पुत्र की प्राप्ति

मेरी बेटी का तीन बार गर्भपात हो गया था। पूज्य बापूजी का सत्संग सुनने के बाद उसने सूरत आश्रम के बड़दादा के फेरे लगाने और पूनम-दर्शन व्रत लेने का निश्चय किया। पहली पूनम भरने के बाद ही वह पुनः गर्भवती हो गयी और पूज्यश्री की कृपा से उसके यहाँ पुत्र का जन्म हुआ !

पूज्य गुरुदेव के श्रीचरणों में मेरे लाखों प्रणाम हैं।

– भारती के. पटेल
सोनी की टेकरी, अडाजण गाँव,
सूरत (गुजरात).

*

'यौवन सुरक्षा' पुस्तक ने बदला मेरा जीवन !

बचपन से ही पूजा-पाठ में मेरी रुचि थी किंतु १४-१५ वर्ष की उम्र में मैं कुसंगी हो गया और अज्ञानतावश गंदी आदतोंवाले मित्रों का संग करने लगा। उन्होंने मुझे हस्तमैथुन करना सिखा दिया। किसी लड़की को देखते ही मेरा मन काम-विकार से भर जाता और मैं एकांत स्थान खोजने लगता। मैं दिन में ३-४ बार वीर्यनाश करता था। किंतु तब भी पूजा-पाठ का मेरा नियम नहीं टूटा, उसे मैं नियमित रूप से करता रहा।

वीर्यनाश से मैं कमजोर हो गया। मेरी आँखों के सामने अँधेरा छाने लगा और थोड़े-से परिश्रम से ही मैं हाँफने लगता था। कभी-कभी अधिक कमजोरी से मूर्च्छा भी आ जाती थी। मेरी संकल्पशक्ति भी कमजोर हो गयी थी। मेरा क्रोध भी अत्यधिक बढ़ गया था। माता-पिता हित की बात बताते किंतु मैं उसे नहीं मानता था और माता-पिता के ऊपर नाराज होकर उन्हें उलटा जवाब भी दे देता था।

आश्रम से प्रकाशित पुस्तक **'यौवन सुरक्षा'** ने मेरे जीवन की दिशा ही बदल दी ! मेरी वह गंदी आदत छूट गयी। मुझे आज तक ऐसी बातें किसी पुस्तक में पढ़ने को नहीं मिलीं। मैं इस पुस्तक को लोगों तक पहुँचानेवालों को नमन करता हूँ।

मैं भी इस पुस्तक को कॉलेजों में तथा गाँवों में पहुँचाने का प्रयास करूँगा। प्यारे गुरुवर को शत-शत प्रणाम हैं, जिनकी कृपा से मेरी गंदी आदत छूट गयी।

– सत्यप्रकाश मिश्र (कक्षा १०वीं)
ग्राम- कैल केशवपुर,
पोस्ट -भरतकुंड, फैजाबाद (उ.प्र.).

*

गुरुकृपा और गोझरण अर्क का चमत्कार !

मेरे शुभचिंतक श्री रामस्नेही यादवजी की माताजी शारीरिक रूप से अस्वस्थ थीं। उनके पेट में गोला है ऐसा बताकर डॉक्टरों ने उन्हें ऑपरेशन की सलाह दी थी। मैंने आश्रम द्वारा निर्मित 'गोझरण अर्क' लेकर उनकी माताजी को दिया और मन-ही-मन पूज्य गुरुदेव से प्रार्थना की कि 'हे प्रभु ! आप कृपा कीजियेगा।'

लगभग १५०० ग्राम का ट्यूमर अपने-आप ही मूत्रमार्ग से बाहर निकल गया और आज वे पूर्णतः स्वस्थ हैं !

धन्य है बापूजी की कृपा ! पूज्य गुरुदेव के श्रीचरणों में दंडवत् प्रणाम !

– पुष्परंजन यादव
गंगानगर, मंगला, बिलासपुर (छत्तीसगढ़).

*

('ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि)

आगरा (उ.प्र.), १८ से २० अक्टूबर : आगरा आश्रम में आयोजित ३ दिवसीय सत्संग-कार्यक्रम के दौरान आश्रम में ध्यान योग शिविर का-सा माहौल रहा। परम पूज्य बापूजी ने भौतिक जीवन में सफलता के नुस्खे तो बताये ही, साथ में पारमार्थिक उन्नति एवं ध्यान के भी कई प्रयोग कराये।

फरीदाबाद (हरियाणा), २१ अक्टूबर : पूज्यश्री के श्रीमुख से बहती ज्ञानगंगा का आचमन फरीदाबाद को अनायास ही प्राप्त हुआ। परम पूज्य बापूजी आगरा से दिल्ली जाते हुए यहाँ रात्रि-विश्राम के लिए रुके। पूज्यश्री के आगमन की खबर द्रुत गति से पूरे फरीदाबाद व दिल्ली में फैल गयी। फलस्वरूप दूसरे दिन आश्रम-प्रांगण भक्तों से खचाखच भर गया। अचानक सद्गुरुदेव को अपने बीच पाकर साधकवृंद आनंद के सागर में गोते लगाने लगा।

अमदावाद (गुजरात), २३ से २६ अक्टूबर : हर वर्ष की भाँति इस वर्ष भी दीपावली महोत्सव यहाँ पूज्यश्री के पावन सान्निध्य में सम्पन्न हुआ। पूज्यश्री की उपस्थिति में मनायी जानेवाली इस दीपावली को केवल दीपावली ही नहीं बल्कि 'ज्ञान-दीपावली' कहना अधिक उपयुक्त होगा।

५६ भोगों एवं मिठाइयों के लौकिक प्रसाद के साथ पूज्यश्री हर रोज आत्मप्रसाद भी परोसते रहे। २६ नवम्बर अर्थात् नूतन वर्षारंभ के प्रारंभिक क्षणों को सुखद बनाने की अग्रिम भूमिका पूज्यश्री के सत्संग के दौरान बनती रही। 'देव-मानव हास्य प्रयोग' से सभी आनंदित-प्रफुल्लित होते रहे।

७ व ८ नवम्बर को पूर्णिमा-दर्शन का कार्यक्रम भी यहीं सम्पन्न हुआ।

विसनगर (गुज.), २ नवम्बर : यहाँ पूर्व राज्यमंत्री, सांसद व महेसाणा डेयरी के चेयरमैन श्री मोतीभाई के नाम से 'श्री मोतीभाई कन्या छात्रावास' के शिलान्यास का कार्यक्रम पूज्यश्री के पुनीत सत्संग व आशीर्वचनों से सम्पन्न हुआ।

बड़नगर (गुज.), ५ व ६ नवम्बर : 'स्कंद पुराण' में वर्णित पुरातन मंदिर 'हाटकेश्वर महादेव' की प्रतिष्ठा से प्रतिष्ठित बड़नगर में २ दिवसीय सत्संग-प्रवचन व भंडारे का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। भंडारे में भोजन-प्रसाद के अलावा पूज्यश्री की ओर से गरीबों को अन्न, वस्त्र, बर्तन, मिठाइयाँ व दक्षिणा भी वितरित की गयी।

पूज्यश्री के करकमलों से ये वस्तुएँ पाकर गरीबों व अभावग्रस्तों की खुशी का पारावार न रहा। आश्रम के दैवी कार्य की प्रशंसा करते हुए उन्होंने चारों ओर खुशी की छटा बिखेर दी। उनके हृदय के भाव उनके चेहरों पर स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। गरीब-गुरबों के प्रति आश्रम का सहानुभूति भरा व्यवहार देखते ही बनता था।

*

पूज्यश्री के आगामी कार्यक्रम

(१) अजमेर (राज.) : २ से ४ दिसम्बर। विश्राम स्थली, पुष्कर रोड।

फोन : (०१४५) २४२२४४५, २७७२१३९, ९८२९०७१३२४.

(२) वृंदावन (उ.प्र.) : ६ से ८ दिसम्बर। अटल्ला चुंगी मैदान।

फोन : (०५६५) २४४३२६२, ९८३७०८९२७९, ९८१००१३४२४, ९८३७०८५७७८.

पूर्णिमा दर्शन : ८ दिसम्बर वृंदावन में
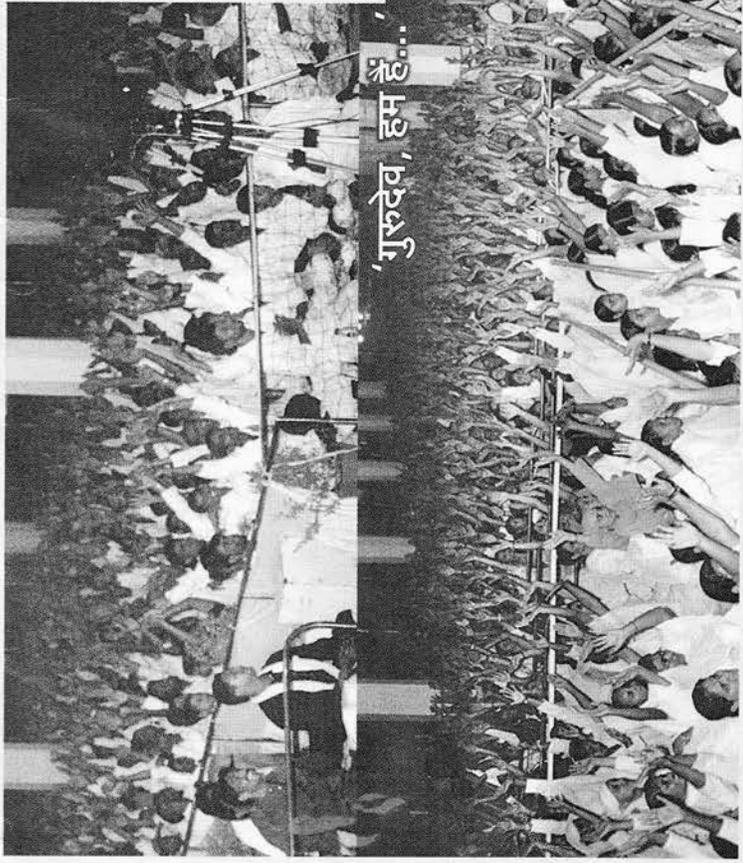
'दिलरूबा दिल की सुनाऊँ,
सुननेवाला कौन है ?
जामे हक भर-भर पिलाऊँ,
पीनेवाला कौन है ?'

'गुरुदेव, हम हैं...'

दीपावली महोत्सव (अमदावाद) का एक दृश्य।

पूज्य बापूजी के अमृतवचनों का प्रसाद अर्थात् 'ऋषि प्रसाद'

* यदि मनुष्य गुरुओं की वाणी एवं शास्त्रवचनों का पालन करे तो उसमें इतनी सारी शक्ति है कि वह अपने एक जीवन में हजारों बार आत्म-साक्षात्कार कर सकता है । हालाँकि एक बार आत्म-साक्षात्कार हो जाय तो दुबारा करने की जरूरत नहीं है किंतु हम विषय भोगों को इतना महत्त्व देते हैं कि हम विषयों को नहीं भोगते, वे विषय ही हमको भोग जाते हैं और हम विकारों के संस्कार में बँध जाते हैं ।
* सत्संग से वह चीज मिलती है जो धन से, सत्ता से या स्वर्ग से भी नहीं मिलती । सत्संग हमें तीन बातें सिखाता है : निरीक्षण, शिक्षण और नियंत्रण ।
* परमात्म-तत्त्व में दृढ़ विश्वास और साकार सद्गुरु में अव्यभिचारिणी भक्ति ही सुख-शांति और दिव्यता का प्रकाश देती है ।
* जो मनुष्य इसी जन्म में मुक्ति प्राप्त करना चाहता है, उसे एक ही जन्म में हजारों वर्षों का काम कर लेना होगा ।
* विवेक-विचार द्वारा इच्छाएँ जैसे-जैसे शांत होती जाती हैं, वैसे-वैसे दुःखरूपी छूत की बीमारी मिटती जाती है ।
* विवेकहीन इच्छा को पोसना, उसे पूर्ण करना यह तो संसाररूपी विषवृक्ष को पानी से सींचने के समान है ।
* सूर्य के उदय होने से पहले ही अंधकार पलायन होने लगता है, ऐसे ही विवेक जागेगा तो दुःख मिटने लगेंगे ।
* मति का आदर करोगे तो विकारों में से निर्विकारिता की ओर जाना बिल्कुल जरूरी दिखेगा । मति का आदर नहीं करोगे, मन-इन्द्रियाँरूपी चपरासी और कारकूनों के कहने में मति को बहाते रहोगे तो जगत सच्चा लगेगा ।
* मन यदि संसार में उलझता है तो अपना सत्यानाश करता है । मन यदि परमात्मा में लगता है तो अपना एवं अपने सम्पर्क में आनेवालों का बेड़ा पार करता है । इसलिए खूब सँभल-सँभलकर जीवन बिताओ ।
* पूतना की नाईं वासना में भी ऊपर से दूध अर्थात् सुख दिखता है किंतु भीतर तो केवल जहर अर्थात् दुःख ही भरा होता है ।
* वासना को यदि बुद्धि सहयोग न दे तो वासना कुछ नहीं कर सकती क्योंकि उसमें क्रिया करने की शक्ति नहीं है ।
* आत्मबल सर्व रिद्धि-सिद्धियों का पिता है ।
* आप अपने मन की वृत्ति को अंतर्मुख करके देखो, फिर निंदा और प्रशंसा आपके लिए कुछ न रहेगी, भोग और त्याग कुछ न रहेगा, मित्र और शत्रु कुछ न रहेंगे ।
* जैसे सभी तरंगें जलस्वरूप ही हैं, उसी प्रकार सभी पदार्थ वस्तुतः ईश्वरस्वरूप हैं ।
* जीवन में अनर्थ का मूल सामान्य अज्ञान नहीं अपितु अपनी आत्मा के ब्रह्मत्व का अज्ञान है ।
* सदैव श्रेष्ठ कार्य में लगे रहें । समय बहुत ही मूल्यवान है । समय के बराबर मूल्यवान अन्य कोई वस्तु नहीं है । निरंतर सावधान रहने से ही समय सार्थक होगा, नहीं तो यह निरर्थक बीत जायेगा । जिन्होंने समय का आदर किया है वे श्रेष्ठ पुरुष बने हैं, अच्छे महात्मा बने हैं ।
* संसार से अलविदा होने से पहले ही जो मनुष्य जीवनदाता से सम्बन्ध बाँध लेता है, वही सच्चा बुद्धिमान है, उसीका जन्म सार्थक है ।

R.N.I. NO. 48873/91 POSTAL REGISTRATION. NO. GUJ-1132. LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENSE NO. 207. POSTING FROM AHMEDABAD 2-15 OF EVERY MONTH.
✲ BYCULLA STG. WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO. 236. REGD NO. TECH/47 833/MBI/2003-05 POSTING FROM MUMBAI 9 & 10th OF EVERY MONTH. ✲ FOREIGN POSTING 5 & 6 OF EVERY MONTH FROM AIRPORT PO. - 400099. ✲ DELHI REGD. NO. DL-11513/2003 WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO.-U(C) 232/2003 POSTING FROM DELHI 10-11 OF EVERY MONTH.